संकट के बाद : वित्तीय उदारीकरण की लागत व लाभ का मूल्यांकन*

अडयर टर्नर

गवर्नर महोदय, देवियो और सज्जनो। चौदहवें चिंतामण देशमुख स्मारक व्याख्यान में आमंत्रित होना बड़े गौरव की बात है और आप लोगों के साथ मुंबई में रहकर मुझे बेहद खुशी हो रही है। भारतीय रिज़र्व बैंक (आरबीआइ) एक ऐसी प्रतिष्ठित संस्था है जिसे वित्तीय स्थिरता और अनुकूलतम नीति, जिस पर विश्वभर के नीति-निर्माता चिंतन करते रहे, संबंधी महत्वपूर्ण मुद्दों पर गंभीर विश्लेषण करने वाले केंद्र होने की ख्याति-प्राप्त है तथा हाल में मची वित्तीय उथलपुथल से भारत को सही दिशा प्रदान करने का श्रेय उसी को है। उस उथलपुथल की जड़ों और उस पर किस प्रकार से जवाबी कार्रवाई की गई, इन बातों पर आज रात मैं चर्चा करूँगा।

वर्ष 2008 की शरत-ऋतु में विश्व वित्तीय प्रणाली ने भीषण संकट का सामना किया, जिसने वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ-साथ विश्वभर के कई लोगों की नौकरी, संपत्ति और खुशहाली को भारी नुकसान पहुंचाया। इस परिप्रेक्ष्य में यह सब सीखना जरूरी है कि किस गलती की वजह से ऐसा हुआ और किस प्रकार से भविष्य में सुस्थिर वैश्विक वित्तीय प्रणाली का निर्माण किया जाए। इसके अंतर्गत इंटरनेशनल फाइनैन्शियल स्टेबिलिटी बोर्ड का निर्माण कर विकसित और उभरते बाज़ार के केंद्रीय बैंकरों, विनियामकों और वित्त मंत्रियों को शामिल करते हुए एक नई संस्थागत संरचना को अपनाया गया। हम एक सुदृढ़ और पूरे विश्व-मान्य जवाबी कार्रवाई को साकार करने का प्रयास कर रहे हैं।

पहले भी हमने ऐसी स्थिति देखी थी। वस्तुतः 2008 से 11 वर्ष पहले, 1997 की ग्रीष्म-ऋतु में विश्व वित्तीय प्रणाली भी भीषण वित्तीय संकट की चपेट में आई थी, 1997 से 1998 तक उभरते बाज़ार, मुख्यतः एशियाई संकट बना रहा। उस संकट के बाद उससे सबक सीखने और विनियमन की गुणवत्ता को सुधारने का संकल्प लिया गया। तब नई संस्थागत संरचनाएं विकसित हुईं : नए

* 15 फरवरी 2010 को चौदहवें चिंतामण देशमुख स्मारक व्याख्यान, भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई में लार्ड अडयर टर्नर, अध्यक्ष, फाइनैन्शियल सर्विसेज अथॉरिटी, यूके द्वारा दिया गया भाषण।

सिरे से पैदा होने वाले जोखिमों पर बेहतर ढंग से निगरानी सुनिश्चित करने और भावी संकट से बचे रहने के लिए आवश्यक नीतिगत जवाबी कार्रवाई शुरू करने हेतु द फाइनैन्शियल स्टेबिलिटी फोरम की स्थापना 1998 में हुई, जोकि फाइनैन्शियल स्टेबिलिटी बोर्ड का ठीक पूर्ववर्ती मंच था। दुर्भाग्यवश वह संस्थागत जवाबी कार्रवाई कारगर नहीं रही।

जबकि हाल के संकट का कारण कुछ और था। यह माना जाता है कि अधिकांश जनरल, अंतिम संग्राम को ध्यान में रखकर युद्ध लड़ते हैं, ठीक उसी तरह विनियामक और केंद्रीय बैंकर अंतिम संकट से प्रकट हुई समस्याओं पर ही ध्यान देते हैं। हमें इस गलती से बचना चाहिए। इस गलती से निपटने के लिए हमें न केवल अंतिम संकट से, बल्कि उससे पहले वाले संकटों से भी सबक सीखने चाहिए। साथ ही, अंतिम वित्तीय संकट और उससे पहले वाले संकटों के दोनों स्वरूपों में अंतनिर्हित सामान्य बातों का पता लगाना चाहिए। अतः आज शाम को मैं यह बताऊँगा कि 1990 के एशियाई संकट और अंतिम वैश्विक संकट से हम कौन-कौन से समान सबक सीख सकते। भारत इस विश्लेषण की दिशा में प्रयास करने की दृष्टि से समुचित देश है, क्योंकि भारत इन दोनों संकटों से निपटा है, जहाँ सापेक्ष रूप से कम वित्तीय अस्थिरता और हलके-से वित्तीय नुकसान हुए हैं।

किंतु इन दोनों संकटों में कई महत्वपूर्ण अंतर भी है। वर्ष 1997 उभरते बाज़ारों के संकट में रहा, जिसके पीछे सीमा-पार पूंजी प्रवाह का हाथ था जिसमें अवास्तविक व वास्तविक दरों में भारी उतार-चढ़ाव ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, अर्थात् कभी वे दरें उच्च स्तर पर पहुंचीं तो कभी बेहद लुढ़क गईं। एकाएक हुए मूल्यह्रास के कारण मुद्रास्फीतिकारी दबाव और पूंजी-पलायन हुआ, जिसकी रोक-थाम के लिए कड़ी राजकोषीय व मौद्रिक नीतियां अपनाई गईं।

इसके विपरीत, 2008 में संकट का आविर्भाव यूएस और यूरोपीय वित्तीय प्रणाली में हुआः जिसकी जड़ें विकसित बाज़ारों में अंधाधुंध तरीके से दिए गए ऋण और प्रतिभूत ऋण के जटिलतापूर्ण व विकृत रूपों तथा परिपक्वता रूपांतरण में उत्पन्न नए व जोखिमपूर्ण रूपों के विकास में जम गईं। विनिमय दर उतार-चढ़ाव और अंतरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों ने गौण भूमिका अदा की : 2008 के उत्तरार्द्ध में उभरते बाज़ारों में पूंजी प्रवाह अस्थिर रहा, वह भी संकट की वजह से, किंतु संकट के पीछे इसका कोई हाथ नहीं था। उस तबाही के चलते मुद्रास्फीति नहीं, बल्कि अवस्फीति हुई, वह भी मूल्य में और उत्पादन में। इसके लिए राजकोषीय और मौद्रिक शिथिलता का उपाय किया गया।

उक्त महत्वपूर्ण अंतरों के बावजूद इन दोनों संकटों में कई काफी मिलती-जुलती विशेषताएं भी रहीं। विशेष रूप से दोनों संकटों का आविर्भाव वास्तविक गैर-वित्तीय आर्थिक गतिविधियों से संबद्ध वित्तीय गतिविधि में हुई बढ़ोतरी में हुआ था या उसके बाद हुआ था - यही अर्थव्यवस्था का बढ़ता 'वित्तीयकरण' कहलाता है।

एशियाई संकट उभरते देशों में या उनसे आगत पूंजी प्रवाहों की मात्रा में आए उछाल से उत्पन्न हुआ : यह उछाल ईक्विटी संविभाग के प्रवाहों, ऋण प्रतिभूति के प्रवाहों और सीमा-पार बैंक पूंजी प्रवाहों में दिखाई पड़ा। इस उछाल में, विकसित देशों के बीच हुए वित्तीय पूंजी प्रवाहों की दीर्घावधि वृद्धि का भी योगदान रहा। 1997 के संकट की वजह से आई रुकावट के बाद विकसित देशों के बीच तथा विकसित और उभरते देशों के बीच दोनों तरह के पूंजी प्रवाहों में पुनः काफी तेजी आई। इस प्रकार उस तेजी से वैश्विक जीडीपी और व्यापार सापेक्षिक विदेशी विनिमय व्यापार गतिविधि की मात्रा में पिछले 30 वर्षों में भारी वृद्धि होती रही।

कई दशकों के बाद 2008 में आए संकट, जो विकसित अर्थव्यवस्थाओं की वित्तीय गतिविधियों में उत्पन्न हुआ, जिसे जीडीपी की तुलना में कुल बैंक परिसंपत्तियों से या ऋण और डेरिवेटिव व्यापार की मात्रा या ब्याज दर डेरिवेटिव व्यापार की मात्रा से आंका गया, में नाटकीय रूप से भारी वृद्धि हुई (स्लाइड 5)।

इस तरह पिछले 30 वर्षों में तमाम उपायों के सिलसिले में वित्तीय गतिविधि की वास्तविक मात्रा में, जीडीपी जैसे चरों में समग्र और सापेक्ष दृष्टि से वास्तविक आर्थिक कार्यकलापों दोनों के परिप्रेक्ष्य में काफी बढ़ोतरी हुई है। यह प्रवृत्ति परवर्ती कई दशकों में दिखाई न पड़ी।

अलबत्ता, वित्तीय गतिविधियों के पैमाने में हुई बढ़ोतरी आंशिक रूप से विश्व व्यापार के वैश्वीकरण और दीर्घावधिक पूंजी-प्रवाहों और अस्थिर विनिमय दरों की स्थिति में और तदुपरांत 1970 के पूर्वार्द्ध में ब्रिट्टन वूड प्रणाली में हुई विफलता में दिखाई पड़ी। किंतु उसे वित्तीय उदारीकरण की ऐसी नीतियों ने भी जान-बूझकर बढ़ावा दिया, जिनमें विकासमान प्रबल पारंपरिक अवधारणा, जिसे वाशिंग्टन समझौते के रूप में जाना गया, की दृष्टि से वित्तीय क्षेत्र के आकार और जटिलता को राष्ट्रीय व वैश्विक वृद्धि के महत्वपूर्ण सकारात्मक कारक के रूप में समझा गया।

अब हमें इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर प्रकाश डालना ज़रूरी है, क्योंकि महज 12 वर्षों में दो भारी झटके लगे हैं। इस संबंध में यह जानना आवश्यक है कि क्या वित्तीय गतिविधि का विकासमान पैमाना लाभकारी रहा या नुकसानदेह, साथ ही, बढ़ते वित्तीय उदारीकरण के लाभों और उससे संबद्ध जटिलता और अस्थिरता की स्थिति में सार्वजनिक नीति के संबंध में किस प्रकार का समझौता अपेक्षित है।

इस विश्लेषण का प्रारंभ समष्टि व दीर्घावधिक संकेतकों पर निगाह रखकर किया जाए तो श्रेयस्कर होगा। क्या आर्थिक इतिहास में कभी अर्थव्यवस्था की वित्तीय सघनता, जिसे विभिन्न साध्य उपायों से आंका जाता है, और आर्थिक वृद्धि की समग्र दर के बीच कभी साफ सहसंबंध दिखाई पड़ा है? इसका उत्तर है समष्टि स्तर पर कोई स्पष्ट और सार्वभौमिक सकारात्मक संबंध नहीं हैं। कैरमेन रेनहार्ट और केन रोगॉफ ने वित्तीय उतावलापन, गिरावट और ऋण-चूक ('दिस टाइम इट्स डिफरेंट') का शानदार ढंग से सर्वेक्षण किया है, साथ ही, 'वित्तीय निग्रह', जिसमें कई देशों में वित्तीय प्रणाली की भूमिका का दमन किया गया था, के रूप में 1945 से 1970 तक की अवधि का निरीक्षण किया है।[1] और कुछ देशों में, उदाहरणार्थ भारत में 'वित्तीय निग्रह' बाज़ार संबंधी प्रतिबंधात्मक नीतियों में से संभवतः एक ऐसा पैकेज रहा, जिसने आर्थिक विकास को कुंठित किया। किंतु इसी अवधि में कुछ देशों ने स्पष्टतः 'दमित' वित्तीय प्रणालियों के साथ ऐतिहासिक रूप से तेज विकास हासिल किया है (उदाहरणार्थ कोरिया)। और इसी अवधि में यूएस, यूरोप और जापान जैसी विकसित अर्थव्यवस्थाओं ने परवर्ती उन 30 वर्षों की तुलना में काफी और सापेक्षिक रूप से स्थिर विकास हासिल किया जब वित्तीय गतिविधियां और वित्तीय उदारीकरण जोर पकड़ रहा था।

पिछले 30 वर्षों में बृहत् वित्तीय नवोन्मेष संबंधी कोई ऐसा ठोस सबूत नहीं मिला है जो उत्पादन की वृद्धि में लाभकारी प्रभाव दर्शाता हो। वस्तुतः हाल में मॉरिट्ज़ शूलैरिक और ऐलन टेलर द्वारा प्रस्तुत पत्र में लीवरेज और ऋण विस्तारण, जिन्हें उदारीकरण और नवोन्मेष द्वारा सुसाध्य बनाया गया है,का उल्लेख किया है, किंतु उन्हें उदारीकरण और नवोन्मेष के संबंध में कोई ऐसा प्रायोगिक सबूत नहीं मिला है जो नमूने के तौर पर चुने गए देशों की प्रवृत्तिमूलक विकास दरों में तदनुरूपी बढ़ोतरी को साबित करता हो।[2]

[1] सी रेनहार्ट और के. रोगॉफ दिस टाइम इट्स डिफरेंटः ऐट सेन्चूरीज़ ऑफ फाइनैन्शियल फोली, प्रिंसटन, 2009।

इस प्रकार व्यापक ऐतिहासिक समष्टिगत तथ्यों से ऐसा कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता है कि बाज़ार की अर्थव्यवस्थाओं की वित्तीय सघनता में वृद्धि होने से विकास व कल्याण में निश्चित रूप से और हमेशा के लिए बेहद लाभ मिलेगा।

तथापि, इस सामान्य निष्कर्ष से आगे बढ़ने के लिए हमें दोनों आर्थिक सिद्धांतों पर विचार करना चाहिए कि क्यों और किन परिस्थितियों में वित्तीय उदारीकरण आर्थिक लाभ पहुंचा सकता है। साथ ही, 1997 के संकट में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाली वित्तीय गतिविधि के विशिष्ट वर्ग तथा तदुपरांत 2007 से 2009 के विकसित विश्व के संकट पर विचार किया जाए।

अतः इस व्याख्यान को निम्नलिखित पांच खंडों में विभाजित किया जाता है :

1. व्यतिरेकी आर्थिक सिद्धांत : नव-शास्त्रीय एवं केन्स/मिन्स्की दृष्टिकोण।
2. 1997 का एशियाई संकट : क्या अल्पावधिक पूंजी प्रवाह आर्थिक दृष्टि से मूल्य-वर्धक है?
3. विकसित जगत का 2007 से 2009 तक का संकट : क्या वित्तीय नवोन्मेष ने आर्थिक मूल्य प्रदान किया?
4. विशिष्ट नीतियों के संभाव्य प्रभाव।
5. वित्तीय गहनता और उदारीकरण हेतु हमारे समग्र दृष्टिकोण के प्रभाव।

अर्थशास्त्र की प्रबल नव-शास्त्र विचार-धारा ने वित्तीय गतिविधि - जैसे बाज़ार की प्रचुर चलनिधि, अधिक सक्रिय ट्रेडिंग और वित्तीय नवोन्मेष - की बढ़ोतरी को मोटे तौर पर सकारात्मक विकास माना है।[3] क्योंकि समूचे बाज़ार के लिए व्यापक वित्तीय गतिविधि आवश्यक है। केन्नथ ऐरो और जेरार्ड डेब्रू[4] द्वारा गणितीय ढंग से निरूपित कल्याण-अर्थव्यवस्था के प्रथम मूलभूत प्रमेय से मालूम पड़ा है कि प्रतिस्पर्धात्मक संतुलन दक्षतापूर्ण होता है। किंतु यह तभी सही साबित होगा जब बाज़ार संपूर्ण हों, अर्थात् ऐसे बाज़ार हों, जो सभी वांछित संविदाओं को पूरा करते हों, जिनके अंतर्गत बीमा संविदाएं और निवेश संविदाएं भी शामिल हैं, साथ ही वे चालू संविदाओं व वायदा संविदाओं तथा मौजूदा मालों, सेवाओं और श्रम संबंधी बाज़ारों के बीच संपर्क स्थापित करने में सक्षम हों। तात्पर्य यह है कि यदि वित्तीय बाज़ार अधिक चलनिधि से संपन्न हों तो वित्तीय नवोन्मेष भी अधिक व्यापक होंगे, जिससे अर्थव्यवस्था अधिक दक्षतापूर्ण होगी।

- अधिक चलनिधि संपन्न पण्यवस्तु वायदा बाज़ार लाभकारी होते हैं, क्योंकि वे पण्य-वस्तुओं के उपयोगकर्ताओं और उत्पादकों को जोखिम से बचाने में सक्षम बनाते हैं।
- क्रेडिट डिफाल्ट स्वैप बाज़ार में चलनिधि की उपलब्धता कार्पोरेट ऋण के निवेशकों व निर्गमकर्ताओं को वांछित रूप से जोखिम प्रोफाइल हासिल करने और उन्हें लगातार आत्मसात् करने में सक्षम बनाती है।
- 1990 के दशक के मध्य में पनपे विविधतापूर्ण संरचनागत ऋण बाज़ार लाभकारी रहे, क्योंकि उन्होंने निवेशकों को अपनी विशिष्ट प्राथमिकताओं के अनुरूप जोखिम, प्रतिफल और चलनिधि के मेल का सटीक ढंग से चयन करने में सक्षम बनाया।

[2] एम.शूलैरिक और ए.एम. टेलर: क्रेडिट बूम्स गॉन बस्ट: मॉनिटरी पॉलिसी, लीवरेज साइकल्स एंड फाइनैन्शियल क्राइसेस 1870-2008, एनबीईआर कार्य-पत्रक सं.15512, नवंबर 2009 ।

[3] मैं यूके कैबिनट ऑफिस के श्री जोनाथन पोर्टेस, मुख्य अर्थशास्त्री के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने एक अप्रकाशित आलेख देकर अनुगृहीत किया है जिसमें नव-शास्त्रीय और केन्स/मिन्स्की दृष्टिकोण के अंतरों को साफ-साफ उजागर किया गया है।

[4] के. ऐरो और जी. डेब्रू, एक्जिसटेंस ऑफ एन इक्विलीब्रियम फॅार ए कंप्टीटिव इकनॉमिक, इकॉनोमेट्रिका, खंड-22, 1954 ।

- साथ ही, निधियों के आपूतिकर्ताओं को निधियों के उपयोगकर्ताओं के साथ जोड़ने के जितने विकल्प मौजूद हों - जिनके अंतर्गत बाज़ार में चलनिधि उपलब्ध कराना शामिल है, जिससे निवेशक लिखतों की संविदात्मक परिपक्वता-अवधि से हटकर समय-अवधि तय करने में सक्षम बनते हैं - उतना ही पूंजी का आबंटन अधिक दक्षतापूर्ण होता है।
- अतः प्रत्येक मामले में ''नवोन्मेष हमें ऐरो-डेब्रू निरवाना के करीब ले जाती है जहाँ सभी संभाव्य बाज़ार मौजूद हों, साथ ही वे पूर्ण भी हों।''[5]

इसके अलावा, वित्तीय बाज़ारों के लाभ किसी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत नहीं अपितु देश के स्तर पर मिलते हैं। देशों के बीच पूंजी प्रवाह सुचारू रखने की दृष्टि से बाज़ार जितने कम नियंत्रित हों, साथ ही गहरे हों उतना ही पूंजी का अंतरराष्ट्रीय आबंटन दक्षतापूर्ण होगा, साथ ही, वैश्वीकरण और वित्तीय उदारीकरण की वजह से वह प्रवाह नैसर्गिक रूप से होता है और लाभकारी संबंध भी स्थापित हो जाता है।

किंतु इस बात का मतलब यह नहीं कि वित्तीय सेवाओं और वित्तीय बाज़ारों के विनियमन की कोई भूमिका है ही नहीं। नव-शास्त्रीय सिद्धांत ने विशिष्ट रूप से यह उजागर किया है कि बाज़ार की खामियों की वजह से प्रतिस्पर्धात्मक संतुलन की परिस्थितियां अवरुद्ध हो सकती हैं और यह भी उल्लिखित किया है कि लैन्स्टेर-लिप्सी की परिस्थितियों के अनुसार कोई बाज़ार त्रुटिपूर्ण हो तो अन्य बाज़ारों का उदारीकरण पूरी तरह लाभकारी[6] नहीं हो सकता। किंतु नव-शास्त्रीय अवधारणा ऐसे किसी विनियामक सिद्धांत की पैरवी नहीं करती है जहाँ नीति-निर्धारक आदर्श रूप में बाज़ार की उन विशिष्ट खामियों की पहचान करने की चेष्टा करते हों जो संपूर्ण व कुशल बाज़ारों को कुंठित करती हों, तथा जहाँ ऐसे विनियामक हस्तक्षेप पर किसी उत्पाद पर पाबंदी लगाए बिना या बाज़ारों में उतार-चढ़ाव को हतोत्साहित किए बिना पारदर्शिता संबंधी अपेक्षाओं, जिनसे बाज़ारों को यथासंभव दक्षतापूर्ण किया जा सकता है, के माध्यम से आदर्श रूप से ध्यान-केंद्रित किया जाना चाहिए।

इन विचारों और उनसे प्राप्त बाज़ार संबंधी अत्यंत मुक्त निहितार्थों ने पिछले कई दशकों से शैक्षिक अर्थशास्त्र में प्रबल भूमिका निभाई है, लेकिन इस संबंध में कई विरोधी विचार भी उठे थे। इन विचारों ने विकसित जगत के वित्त मंत्रालयों, केंदीय बैंकों और विनियामकों को काफी प्रभावित किया। केन्स का यह बयान बहुत लोकप्रिय है- 'ऐसा व्यावहारिक व्यक्ति जो खुद के बारे में यह विचार रखता है कि वह किसी भी बौद्धिक विचार से प्रभावित नहीं होता, तो वह आम तौर पर किसी निष्क्रिय अर्थशास्त्री का गुलाम होता है।' किंतु सबसे बड़े खतरे की बात यह है कि नीति-निर्धारक की भूमिका निभाने वाले प्रतिभा-संपन्न पुरुष या स्त्री प्रायः किन्ही अकादमी अर्थशास्त्रियों की वर्तमान पीढ़ी की प्रबल परंपरागत अवधारणा के सरलीकृत रूप के गुलाम बने रहते हैं। यूके फाइनैन्शियल सर्विसेज अथॉरिटी के मामले में यह माना जा रहा था कि लगभग सभी मामलों में बाज़ार की प्रचुर चलनिधि लाभकारी होती है, वित्तीय नवोन्मेष को प्रोत्साहित किया जाए, जिससे निवेशक और निर्गमकर्ता के विकल्प को बढ़ा सकता है, तथा विनियामक हस्तक्षेपों को बाज़ार-विशेष की खामियों के अनुरूप न्यायसंगत ठहराया जाए, जिनका अभिकल्प ही उन खामियों को दूर करने के लिए किया जाता हो, संकट से पहले कई वर्षों तक ये सभी बातें हमारे संस्थागत डीएनए में प्रमुख तत्व रहीं। एशियाई संकट तथा 2007 से 2009 तक की अवधि में अंतरराष्ट्रीय मुदा कोष का रुख बाज़ार संपूर्णता और आबंटनात्मक दक्षता के सिद्धांतों के संदर्भ में मुक्त पूंजी प्रवाहों और वित्तीय नवोन्मेष के लाभों पर ज़ोर देने के प्रति प्रबल रहा।

[5] जोनाथन पोर्टेस के पत्र से उद्धृत।

[6] रिचर्ड लेप्सी और केल्विन लैनकैस्टर ''द जनरल थ्योरी ऑफ द सेकेंड बेस्ट, रिव्यू ऑफ इकॉनोमिक स्टडीज 1956"।

किंतु ट्रेडिंग गतिविधि की बढ़ोतरी और नवोन्मेष के माध्यम से असीम वित्तीय सघनता के इस उदार विचार को केन्स/मिन्स्की विचारधारा ने ठुकरा दिया। केन्स ने द जनरल थियोरी के अध्याय-12 में बड़े अच्छे ढंग से यह तर्क पेश किया है कि चलनिधिगत वित्तीय बाज़ारों ने युक्तिसंगत प्रतिस्पर्धात्मक संतुलन की उपलब्धि के माध्यम से आबंटनात्मक दक्षता को सुनिश्चित नहीं किया है, अपितु इसके विपरीत वे अंतर्निहित व अपरिहार्य कारणों से स्वतः प्रबलकारी समूह/गतिशीलता प्रभावों के अध्यधीन रहे। उन्होंने व्यावसायिक निवेश के बारे में उनका लोकप्रिय कथन है कि वह 'सबसे सुंदर लड़की चुनने की प्रतिस्पर्धा' जैसा है, जिसमें कामयाब प्रतिस्पर्धी वही है जिसने अन्य प्रतिस्पर्धियों की तरजीहों को सही ढंग से और शीघ्रता से भांप लिया हो। 'यह न किसी अमुक व्यक्ति के निर्णयानुसार सबसे अधिक सुंदर लड़की का चयन करने का मामला है न ही ऐसे व्यक्तियों का मामला है, जिनकी आम राय में वास्तविक रूप में किसी लड़की को सबसे सुंदर माना जाता हो। हम तीसरे स्तर पर पहुंच चुके हैं, जहाँ हम अपनी प्रज्ञा का उपयोग यह जानने में करते हैं कि औसत अभिमत किस प्रकार के औसत अभिमत की प्रत्याशा रखता है। मुझे विश्वास है कि ऐसे कई व्यक्ति हैं जो चौथे, पांचवें और उससे उच्च स्तरों का प्रयोग करते हों।'[7]

इसलिए केन्स का मानना था कि पेशेवर निवेशक या ट्रेडर, चाहे वे ईक्विटी बाज़ारों, मुद्रा बाज़ारों के हों या आज के संदर्भ में उसने सीडीएस बाज़ार को भी शामिल कर लिया होता, को समाचारों के माध्यम से पता चलने वाले संभाव्य बदलावों और परिवेशजन्य 'संभाव्य परिवर्तनों के पूर्वानुमान से चिंतित होने के लिए विवश किया जाता है, जिससे यह महसूस किया गया कि बाज़ार के प्रति जनमानस सबसे अधिक प्रभावित होता है।' तथा उन्होंने यह तर्क पेश किया कि पूर्ण सट्टेबाजी, जिसमें कोई मूल सिद्धांत ही न हो, की वजह से ऐसे स्वतः प्रबलकारी बुलबुले पैदा हो गए जिन्होंने न केवल कोई सार्थक आबंटनात्मक भूमिका अदा की, अपितु कुछ महत्वपूर्ण अस्थिरकारी प्रभाव छोड़ दिए।

केन्स के तर्क को युगांतरकारी बाज़ार-उन्माद, खलबली और अचानक गिरावट के संबंध में चार्ल्स किन्डेलबर्गर के विश्लेषण से ठोस प्रायोगिक समर्थन प्राप्त हुआ।[8] हैमन मिन्स्की ने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था और उसकी वित्तीय संस्थाओं की गतिशीलता संबंधी सिद्धांत विकसित किया, जिसके अनुसार आर्थिक दृष्टि से अनुकूल समयावधि वित्तीय गतिविधि के सापेक्षिक संतुलन में परिवर्तन लाने की संभावना रखती थी, जहाँ पूर्णतः सट्टेबाजी की गतिविधियों की बाबत हेजिंग और युक्तियुक्त आबंटनात्मक गतिविधियों की कोई गुंजाइश ही न हो, जिसके परिणामस्वरूप मूल्यों में एकाएक भारी गिरावट, ऋण अपस्फीति का फंदा और सर्वाधिक वास्तविक आर्थिक अवरोध पैदा हो सकता हो।[9] वस्तुतः विश्व के सबसे अधिक कामयाब वित्तीय सट्टेबाजों, विशेष रूप से जार्ज सोरोस ने स्वयं यह तर्क प्रस्तुत किया है कि प्रमुख चलनिधिगत वित्तीय बाज़ार मूलभूत तत्वों की वजह से संतुलन की ओर आगे नहीं बढ़ते, बल्कि वे अनंत प्रतिवर्ती असंतुलन गतिशीलता के अध्यधीन रहते हैं।[10]

इन असंतुलन गतिशीलताओं को विभिन्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है :

- केन्स ने भविष्य की अंतर्निहित अकाट्य अनिश्चितता के महत्व पर स्वयं ज़ोर दिया, ऐसी स्थिति में वायदा सट्टे बाजार के परिदृश्य का तटस्थ व अपुनरावर्त्य मूल्यांकन करना असंभव-सा लगता है।[11]

[7] जॉन मैनार्ड केन्स, द जनरल थ्योरी ऑफ एंप्लाइमेंट, इंटरेस्ट्स एंड मनी, 1936, अध्याय 12।

[8] चार्ल्स किंडेलबर्गर, मेनियाज़, पैनिक्स एंड मार्केट्स, 1978 ।

[9] हैमन मिन्स्की, स्टेबिलाइज़िंग ऐन अन्स्टेबल इकॉनोमी, 1986।

[10] जार्ज सोरोस, द न्यू पैरडिम फॉर फाइनैन्शियल मार्केट्स, 2008।

[11] गणितीय रूप से निरूपित जोखिम और अंतर्निहित अकाट्य अनिश्चितता के बीच का अंतर इस विचार का मूलभूत तत्व है। कृपया इस अंतर के क्लॉसिक बयान के संदर्भ में फ्रैंक नाइट रिस्क, अनसर्टेनिटी एंड प्रॉफिट, 19,21 देखें।

- अन्य लेखक बाजार की त्रुटियों की भूमिका पर जोर देते हैं, जैसे बाधक प्रिंसिपल/एजेंट संबंध, अर्थात् अंतिम निवेशकों और उनकी ओर से ट्रेडिंग के संबंध में निर्णय लेने वाले एजेंटों के बीच का संबंध।[12] ये प्रिंसिपल/एजेंट संबंध, व्यक्तिगत निर्णायकों के इस प्रकार कार्य करने को युक्तियुक्त स्थिति बना देते हैं कि मूल्य में उतार-चढ़ाव पैदा हो जाए, किंतु उसमें उनका समेकित प्रयास अयुक्तियुक्त-सा लगे, साथ ही, आर्थिक हानि पहुंचाने वाला भी। अतः इस मायने में ये लेखक नव-शास्त्रीय विचार-धारा की 'बुद्धिशील आर्थिक व्यक्ति' वाली धारणा के प्रति प्रवण होते हैं, किंतु उनमें मतभेद भी हैं क्योंकि उनका मानना है कि खामियों की जड़ें इतनी गहराई में जम गईं कि मानो कोई भी बुद्धिमत्तापूर्वक विनियामक हस्तक्षेप उन्हें कभी मिटा नहीं पाएगा। अतः चलनिधिगत वित्तीय बाज़ारों की संभाव्य अस्थिरता और स्वनिर्देशी स्वभाव सभी व्यावहारिक प्रयोजनों में अंतर्निहित होता है, भले ही वह केन्स द्वारा विनिर्दिष्ट तरीके से निरपेक्ष रूप से अंतर्निहित न हो।

- अंततः व्यवहारपरक अर्थशास्त्र विचार-धारा, जोकि डेनियल कह्नेमन की रचनाओं से खास तौर पर जुड़ी हुई है, इस तथ्य पर ज़ोर देती है कि मनुष्य की निर्णयन-प्रक्रिया को विकासात्मक जैव-विज्ञान में विनिर्दिष्ट कारणों से और हमारे मस्तिष्क की बनावट की दृष्टि से एक संपूर्ण युक्ति प्रक्रिया के रूप में नहीं देखा जा सकता, अपितु यह अंतर्निहित रूप से नैसर्गिक प्रवृत्ति है और कभी समूह-मनोविज्ञान के प्रभावों से प्रभावित होती है।

यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि इस विचार-धारा को हम मौटे तौर पर केन्स/मिन्स्की की संज्ञा दे सकते हैं, जिसे नव-शास्त्रीय संतुलन के समकक्ष किसी एकल एकीकारी सिद्धांत द्वारा नहीं चित्रांकित किया जाता। इस तरीके से विश्व को सहज मानकर चलना और समुचित विनियामक हस्तक्षेप के लिए सार्वभौमिक रूप से लागू कतिपय मानदंड तय करना उतनी मामूली बात नहीं, जैसा कि नव-शास्त्रीय दृष्टिकोण से व्युत्पन्न किया जा सकता हो। इसके बारे में मैं खंड 4 और 5 में चर्चा करूँगा। किंतु मैं खंड 5 में यह तर्क प्रस्तुत करूँगा कि जटिल और दुरूह वास्तविक दुनिया में रहना उस स्थिति से बेहतर है जिसके बारे में हम बौद्धिक रूप से सुष्ठु धारणा रखे हुए हैं और जो कि असली दुनिया से कहीं दूर है। 1997 तथा 2007 से 2009 तक के संकट के परिप्रेक्ष्य में मैं यह सुझाव देना चाहूँगा कि हमें सामान्य व असीम वित्तीय उदारीकरण के लाभों को अत्यंत संदेहास्पद दृष्टि से देखना चाहिए।

वर्ष 1997 के संकट के दौरान अल्पावधिक वित्तीय पूंजी प्रवाहों के लाभ-अलाभ का विषय अर्थशास्त्र में ज्वलंत मुद्दा रहा। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है इन प्रवाहों में 1997 के संकट के दशक तक काफी वृद्धि हुई और उस समय व्याप्त प्रबल परंपरागत बुद्धिमत्तापूर्वक विचार, उदाहरणार्थ अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) के रुख, की वजह से ये प्रवाह धनात्मक रहे। नव-शास्त्रीय तर्क के आधार पर सामान्यतः पूंजी प्रवाह (इनमें अल्पावधिक पोर्टफोलियो प्रवाह के साथ-साथ दीर्घावधिक प्रत्यक्ष निवेश भी शामिल है) पूंजी के अपेक्षाकृत कुशलतापूर्वक वैश्विक आबंटन हासिल करने में सहायक होते हैं, जोकि बचतकर्ता और कारोबारी निवेश के बीच एक दक्षतापूर्ण सेतुबंधन का कार्य करते हैं।[13]

वस्तुतः एशियाई संकट के ठीक मध्य में आईएमएफ ने सितंबर 1997 के दौरान हांगकांग में संपन्न अपनी बैठक में यह प्रस्ताव रखा कि पूंजी खाता के उदारीकरण को

[12] कृपया उदाहरणार्थ एन इन्स्टीट्यूशनल थ्योरी ऑफ मोमेंटम एंड रिवर्ज़ल, वयानोस एंड वूली, एलएसई, नवंबर 2008 देखें।

[13] कृपया स्टेन्ली फिश्चर कैपिटल एकाउंट लिबरलाइसेज़न एंड द रोल ऑफ द आइएमएफ इन शुड द आइएमएफ पर्स्यू कैपिटल एकाउंटिंग कन्वर्टबिलिटी? इंटरनेशनल फाइनैन्स, प्रिंसटन 1998 में प्रस्तुत निबंध देखें।

आईएमएफ के मौलिक प्रारंभिक अनुच्छेदों के अंतर्गत समाविष्ट चालू खाता परिवर्तनीयता संबंधी प्रतिबद्धता के अलावा, आईएमएफ सदस्यता की एक बाध्यकारी प्रतिबद्धता कर देनी चाहिए।

किंतु इस परांपरागत बुद्धिमत्तापूर्वक विचार के अनुसार कई अध्ययनों ने यह प्रश्न खड़ा कर दिया कि क्या पूंजी, विशेष रूप से अल्पावधिक पूंजी का निर्बाध प्रवाह विकास की दृष्टि से सकारात्मक है। इस चुनौती को व्यावहारिक व सैद्धांतिक आधारों पर स्थापित कर दिया गया।

- प्रायोगिक प्रमाणों को वैश्विक वित्तीय प्रणाली (सीजीएफएस) संबंधी समिति ने, जिसकी अध्यक्षता आरबीआइ के भूतपूर्व उप गवर्नर राकेश मोहन द्वारा की गई थी, मूल्यांकित किया है।[14] उसमें यह बताया गया है कि पूंजी खाते के उदारीकरण के प्रभावों के विश्लेषण की दिशा में कई देशों द्वारा किए गए प्रयासों के बावजूद ऐसे कम प्रमाण ही मिले हैं जो इस अवधारणा के संबंध में यह सिद्ध करते हैं कि उदारीकरण विकास में संवृद्धि करता है। इस विवाद में डैनी रोड्रिक और जगदीश भगवती जैसे मत-समर्थकों ने एक कदम आगे जाकर कहा है कि ऐसे कोई बाध्यकारी प्रमाण है ही नहीं। [15,16] यूं तो पूंजी खाते के उदारीकरण को बड़े पैमाने में समर्थन प्रदान करने वालों का भी यह मानना है कि उदारीकरण विशिष्ट मामलों में ही लाभकारी होते हैं, ऐसा नहीं कि सभी मामलों में उल्लेखनीय रूप में लाभकारी होते हैं।

- रोड्रिक और सुब्रमण्यम ने एक ऐसा कारण प्रस्तुत किया है क्यों आज की स्थिति में वित्तीय वैश्वीकरण का सुस्पष्ट मामला खरा नहीं उतरता। वित्तीय वैश्वीकरण की आरंभिक अवधि में, अर्थात् प्रथम विश्व युद्ध के 40 वर्षों के पहले अंतरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों ने समृद्ध विकसित देशों, (विशेष रूप से यूके) से बहिर्वाह और पण्य-वस्तु उत्पादक देशों, जहां अपने उद्योगों को विकसित करने हेतु पर्याप्त देशी बचत का अभाव पाया गया, की ओर अंतर्वाह का रूप धारण किया। किंतु हाल का ढांचा ऐसा नहीं है, जिसे रोड्रिक और सुब्रमण्यम ने प्रस्तुत किया। दरअसल, इसके विपरीत, निवल पूंजी प्रवाह निर्धन विकासशील देशों से समृद्ध विकसित देशों की ओर हो रहा है, तथा आम तौर पर विकसित देशों की बचत दरें विकास की दिशा में कोई बाध्यकारी नियंत्रक तत्व नहीं रहीं। पूंजी प्रवाहों के पक्षधर मामले को यह स्पष्ट करने के बजाय कि विकासशील देशों की ओर वित्त के निवल प्रवाह, विकास प्रक्रिया की प्रमुख कुंजी है, यह सिद्ध करना है कि पूंजी के तीव्र दुतरफा प्रवाह अपेक्षाकृत अधिक कुशलतापूर्वक आबंटन को सुसाध्य बनाते हैं।

- इस बीच कई विश्लेषणों ने यह उजागर किया कि अल्पावधिक वित्तीय पूंजी प्रवाह (ऋण प्रतिभूतियों और विदेशी बैंक उधार के माध्यम से होने वाले) अत्यंत अस्थिर हो सकते हैं, जोकि रीनहार्ट और रोगोफ द्वारा विनिर्दिष्ट 'बोनैन्ज़ा' के परवर्ती 'अचानक रुकावट' के अध्यधीन हो। ऐसा प्रतीत होता है कि बोनैन्ज़ा पर स्व-प्रबलकारी समूह-प्रभावों का असर काफी पड़ता है। इसमें कई निवेशक, देश की संभावना के आशावादी मिथ्या का शिकार बन गए, जबकि अन्य लोगों ने स्थानीय मुद्रा व परिसंपत्ति बज़ार में आई स्व-प्रबलकारी मूल्यवृद्धि का तार्किक ढंग से लाभ उठाया, जब तक बोनैन्ज़ा बना रहा। इस बीच अचानक रुकावटें और बहिर्वाह कुछ अधिक स्व-प्रबलकारी रहे और विश्वास धीरे-धीरे ध्वस्त होने लगे, फलतः न

[14] कैपिटल फ्लोज़ एंड इमर्जिंग मार्केट इकॉनोमीज़, सीजीएफएस पत्र सं.33, जनवरी 2009 ।

[15] डी. रोड्रिक एंड ए. सुब्रमण्यम, वाई डिड फाइनैन्शियल लिबरलाइसेज़न डिज़ापॉइंट, मार्च 2008 ।

[16] जे. भगवती, ''द कैपिटल मिथ : द डिफरेंस बिट्वीन ट्रेड इन विजट्स एंड डॉलर्स'', फॉरिन एफयर्ज़, मई 1998 ।

केवल ऐसे देश प्रभावित हुए, जहां लक्षणों को उजागर करने वाली कुछ ही नई सूचनाएं उपलब्ध थीं, बल्कि ऐसे देश भी प्रभावित हुए जिन्हें निवेशकों द्वारा उसी बड़े वर्ग के अंतर्गत शामिल किया गया। परिणामस्वरूप उभरते देशों में स्थित देशी परिसंपत्ति बाज़ारों और विदेशी मुद्रा बाज़ारों को बहुमुखी व क्षणिक संतुलन के रूप में चित्रांकित किया जा सकता है, जैसा कि थाई भट, कोरियाई वन क्रांति और 1997 में इंडोनेशियाई रुपये की दरों में निरूपित किया गया है। (स्लाइड-6)

- इसके अतिरिक्त, अस्थिर अल्पावधिक पूंजी प्रवाह देशी मौद्रिक नीति संचालन को दुरूह बना सकते हैं। इस वजह से प्राधिकरणों के समक्ष यह विकल्प रह जाता है कि वे या तो देशी ऋण और मुद्रा की अवांछित तीव्र वृद्धि को चुनें या ऐसी विनिमय-दर की मूल्य-वृद्धि को स्वीकार करें जो दीर्घावधिक मूलभूत तत्वों द्वारा न्यायसंगत न ठहराए गए तरीके से ट्रेड से जुड़े हुए क्षेत्रों की प्रतिस्पर्धात्मकता का अवमूल्यांकन कर सकती हो। साथ ही, अल्पावधिक अंतर्वाह, विशेष रूप से बैंक ऋण व्यावसायिक रियल एस्टेट जैसे स्थानीय बाज़ारों में, विघटनकारी आस्ति मूल्य में तेज़ी की स्थिति पैदा कर सकते हैं।

- फलतः यह बाध्यकारी तर्क सामने रखा गया कि पूंजी प्रवाहों के लाभ व हानियों के संतुलन में प्रवाह के प्रकार की वजह से अंतर होता है- इस तर्क का सारांश वैश्विक वित्तीय प्रणाली (सीजीएफएस) संबंधी समिति के पेपर में अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। उसमें तत्संबंधी क्रम का सुझाव पेश किया गया है कि अल्पावधिक पूंजी प्रवाह से दीर्घावधिक पूंजी प्रवाह बेहतर है; पार्टफोलियो से प्रत्यक्ष निवेश बेहतर है; तथा ऋण, जिसमें अल्पावधिक अंतर-बैंक प्रवाह हो और जो कम लाभकारी एवं संभवतः अधिक बाधक हो, से ईक्विटी बेहतर है।

कुल मिलाकर ये तर्क निम्नलिखित मज़बूर स्थिति को पैदा कर देते हैं :

- यह मान्यता कि अल्पावधिक पूंजी प्रवाहों के सकारात्क लाभ काफी कम हो सकते हैं, भले ही आघात मौजूद न हों।
- यह मानना कि ये लाभ वित्तीय आघातों के प्रतिकूल प्रभाव से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

इस आलोचना के विपरीत पूंजी प्रवाह के उदारीकरण के प्रतिरक्षा पक्ष ने संभाव्य अस्थिर पूंजी प्रवाहों की वास्तविकता को नकारा नहीं। किंतु उसने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि उक्त स्थिति मूलभूत कमियों, जैसे सरकार की राजकोषीय व मौद्रिक नीति की विश्वसनीयता या देशी वित्तीय प्रणाली का विनियमन और अभिशासन में कमियों की वजह से ही पैदा हो सकती है। इन तर्कों ने लैन कैस्टर और लिप्से के द्वितीय उत्कृष्ट सिद्धांत के अनुरूप यह स्वीकार किया है कि बाज़ार का उदारीकरण उस स्थिति में नुकसानदेह हो सकता है जब बाज़ार की अन्य खामियां और विकृतियां विद्यमान हों। किंतु इस विचार को बाद में इस तर्क को समर्थन प्रदान करते हुए प्रस्तुत किया गया कि पूंजी प्रवाह का उदारीकरण एक अच्छी बात है, बशर्ते कि उसके संबंध में उचित, अनुपूरक सुधार किए जाएं, वे भी समुचित क्रम में। इस तर्क ने मुक्त बाज़ार के पक्षधरों के मन में यह विचार पैदा कर दिया कि 1997 के दौरान, प्रणाली में पाई गई त्रुटियों की वजह से अंत में न तो बाज़ार का अत्यधिक उदारीकरण हुआ, न ही बाज़ारों की अंतर्निहित अस्थिरता, बल्कि अच्छे मुक्त-बाज़ार संबंधी धारणाओं की प्रासंगिकता कुंठित हुई।

वित्तीय बाज़ारों की संभाव्य हानिकारक अस्थिरता को अंतर्निहित व दुरुस्ती-योग्य न समझने वालों और उसे विश्वसनीय नीतियों से तथा समुचित रूप से जानकारी दिलाए जाने से दुरुस्ती-योग्य समझने वालों के बीच विवाद काफी पुराना है। 1943 में अर्थशास्त्री रैग्नर नुर्क्से ने अपने

पेपर में ब्रेट्टन वूड्स के विचार-विमर्शों के संबंध में अपनी राय प्रस्तुत करते हुए 1920 के दशक के पूर्वार्द्ध में मौजूद अस्थिर विनिमय दर पद्धतियों की समीक्षा की है, उन्होंने विशेष रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि 1924 और 1926 के बीच फ्रांसीसी फ्रैंक विनिमय दर में हुए उतार-चढावों से यह निरूपित हुआ है कि 'संचयी और स्व-उत्प्रेरक उतार-चढावों के खतरे... (जोकि)... भुगतानों की शेष-राशि में समायोजन को बढ़ावा देने के बजाय स्वाभाविक संतुलन को तीव्र बनाते हैं और ऐसी स्थिति को जन्म देते हैं जोकि अस्थिरता की ''विस्फोटकारी'' परिस्थिति कहलाती हैट। किंतु नुर्क्से के इस तर्क को फ्राइडमेन और उनके सहयोगियों के इस प्रति-तर्क ने जवाब दिया कि यह सुस्पष्ट स्वतः पूर्तिकारी अस्थिर सट्‌टेबाजी फ्रांसीसी नीति की अनिश्चितताओं की तर्कसंगत प्रतिक्रिया थी, अतः यह सीख प्राप्त हुई है कि नीति का समुचित, सुप्रकटित और विश्वसनीय होना आवश्यक है।[17]

इन भिन्न-भिन्न तर्कों के चलते यह बता पाना सर्वदा असंभव सा प्रतीत होता है कि इनमें से कौन-सा तर्क सही है। किंतु यदि हम वित्तीय सटोरियों के मनःपटल का अवलोकन सीधे तौर पर कर सकें, तब भी यह नामुमकिन ही लगता है। एक ओर प्रमाणों की प्राप्यता न के बराबर है, तो दूसरी ओर 'परिस्थितियां और क्रम-निर्धारण' वाले तर्क को निर्णायक के रूप में न देखे जाने के पीछे तीन बाध्यकारी तर्क हैः

- रोड्रिक और सुब्रहमण्यम ने यह बताया है कि यद्यपि ऐसी 'परिस्थितियां और क्रम-निर्धारण' अल्पावधिक पूंजी प्रवाहों की हानियों को सैद्धांतिक रूप से दूर कर सकते हैं, तथापि हमें ऐसी वास्तविक दुनिया में निर्णय लेना पड़ता है, जहां सरकारों के पास सक्षम साधन उपलब्ध नहीं हों, और अल्पकालीन राजनीतिक दबाव झेलने हो तथा जहां वे 'परिस्थितियों और क्रम-निर्धारण' संबंधी अपने अधिकार को पाने में सक्षम ही न हों।
- किंडेलबर्गर जैसे आर्थिक इतिहासवेत्ताओं के प्रमाण में यह दर्ज किया गया है कि विभिन्न प्रकार के बाज़ारों का रुख उन्मादों, दहशतों और अचानक गिरावटों के दबदबे में रहता है।
- केन्स, मिन्स्की, सोरोस, काहनेमन और अन्यों ने यह व्याख्यान प्रस्तुत किया है कि स्व-प्रबलकारी गतिक प्रभाव उत्पन्न करने में युक्तिसंगत प्रोत्साहनों और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के समागम से कैसी अपेक्षा की जा सकती है।

अतः समग्र रूप से मुझे ऐसा लगता है कि अल्पावधिक पूंजी प्रवाह के उदारीकरण के लाभदायी होने का मामला (जैसा कि जगदीश भगवती ने 1998 के अपने आलेख द कैपिटल मिथ : द डिफरेन्स बिट्वीन ट्रेड एंड विजेट्स एंड डॉलर्स में तर्क प्रस्तुत किया है) किसी प्रायोगिक प्रमाण की तुलना में चिंतन-धारा और स्वयं-सिद्धि के तर्क पर कहीं अधिक आधारित है। किंतु बेशक यह हितों पर भी निर्भर करता है, जैसा कि भगवती ने तर्क प्रस्तुत किया है। 1990 के दशक में पूंजी प्रवाह के उदारीकरण का जो परिदृश्य उत्पन्न हुआ (जोकि विकसित देशों में देशी वित्तीय उदारीकरण से संबंधित है) वह आत्म-विश्वासपूर्ण चिंतन-धारा का दावा था। संयोगवश, यह परिदृश्य प्रमुख और विकसित अर्थव्यवस्थाओं, विशेष रूप से यूएस में तगड़े राजनीतिक प्रभाव के दबदबे में रहने वाली प्रमुख वित्तीय सेवादात्री फर्मों के प्रत्यक्ष वाणिज्यिक हित में उत्पन्न हुआ था।

विचार-धारा और अभिहितों के इस सम्मिलित रूप ने स्वतः संतुलनकारी विनिमय दरों और अभीष्ट पूंजी प्रवाहों की अति-सरलित सर्वमान्य धारणा को जन्म दिया। अतः हमें यह जान लेना चाहिए कि वैश्विक अल्पावधिक पूंजी

[17] इस विवाद पर विचार करने हेतु कृपया बैरी ऐशनग्रीन ग्लोबलाइजिंग कैपिटल, प्रिंसटन 2008 पृष्ठ 49-55 देखें।

और संबद्ध विदेशी मुद्रा बाज़ारों में हमें संभाव्य अस्थिरता और अतिलंघन का सामना करना पड़ सकता है। हमें इस दिशा में क्या करना है, यह पूरा स्पष्ट नहीं है। इसके लिए व्यापक पूंजी प्रवाह नियंत्रकों को काम में लेना सही उत्तर प्रतीत नहीं होता है; इस संबंध में एक तर्क पेश किया गया है कि अल्पावधिक पूंजी प्रवाहों की बाधाओं के विरुद्ध सैद्धांतिक व प्रायोगिक मामला ढीला है, जबकि उनके खिलाफ व्यावहारिक मामला (या कम-से-कम उनकी व्यापक प्रासंगिकता के विरुद्ध) काफी तगड़ा है, क्योंकि वे प्रवर्तनीय नहीं हैं और उनसे और विकृतियां पैदा हो सकती हैं।[18] किंतु मैं खंड 4 में बताए गए मुद्दों पर पुनः प्रकाश डालना चाहूँगा, अब यह तर्क पेश करना चाहूँगा कि विदेशी मुद्रा बाज़ार और अल्पावधिक पूंजी प्रवाह स्वतः संतुलनकारी नहीं है, बल्कि वे कभी-कभार निहित व स्वतः प्रबलकारी अस्थिरता के दबदबे में रहते हैं।

वर्ष 1997 की गिरावट से यह पता चला है कि संभाव्य अस्थिरता के संबंध में अति जागरुकता ने कुछ उभरते बाज़ार वाले देशों में नीतिगत प्रतिक्रिया पैदा कर दी, जिसने 2008 के मूल में अंशदायी भूमिका निभाई। विकासशील देश बृहत् चालू खाते की अधिशेष राशियों और विदेशी मुद्रा प्रारक्षित निधियों के संबंध में नीतियां तैयार करके भावी संकटों का सामना करने हेतु स्वयं को बीमाकृत करने की चेष्टा करने लगे। इन प्रारक्षित निधियों के यूएस खजाना बांडों और एजेंसी ऋण जैसी कम-जोखिम वाली लिखतों में किए गए निवेश ने सार्वभौमिक जोखिम-मुक्त दरें विकसित कीं। इससे कई विकसित देशों, विशेष रूप से यूएस में ऋण विस्तार सुसाध्य हुआ और उत्पादन की उन्नति हेतु अन्वेषण किया जाने लगा, (ऐसा प्रतीत होता है) जिसे जटिल वित्तीय नवोन्मेष की बुद्धिमत्ता से संपन्न किया गया।

[18] कृपया इस तर्क पर विचारार्थ रिचर्ड कूपर, ''शुड द आइएमएफ पर्स्यू कैपिटल एकाउंट कन्वर्टबिलिटी?'' में ''शुड कैपिटल-एकाउंट कन्वर्टबिलिटी बी ए वर्ल्ड ऑब्जेक्टिव?'', प्रिंसटन 1998 देखें।

किंतु समष्टि-असंतुलन से प्रेरित विकास, ऐसी विकसित अर्थव्यवस्था की वित्तीय प्रणालियों, जोकि पहले से सक्रिय हो चुकी थीं, में व्याप्त प्रवृत्तियों से पारस्परिक रूप से प्रभावित हुआ और उसने उनमें गति भी प्रदान की, जिनकी वित्तीय गतिविधियों की मात्रा और जटिलता में काफी आश्चर्यकारी बढ़ोतरी होना उनकी सामान्य विशेषता है। मैंने इसके पहले (स्लाइड 4) 1970 के पूर्वाद्ध से लेकर वैश्विक जीडीपी से संबद्ध विदेशी विनिमय ट्रेडिंग गतिविधि के मूल्य में हुई भारी वृद्धियों को दर्शाया; इनमें से कुछ उभरते बाज़ार वाली मुद्राओं से संबंधित हैं, जबकि अधिकांश प्रमुख विकसित अर्थव्यवस्थाओं की मुद्राओं से संबंधित हैं। मैंने अंतर-वित्तीय संस्था के तुलन-पत्र संबंधी दावों, जोकि 1970 से शुरू होकर संकट तक जारी रहे, को भी दिखाया। 1980 और 1990 के दशकों से इन प्रवृत्तियों में निम्नलिखित बातें समाविष्ट रहीं :

- ब्याज दर डेरिवेटिव में बृहत् बाज़ार की शुरुआत, साथ ही साथ ओवर द काउंटर (ओटीसी) के आनुमानिक मूल्य में बढ़ोतरी, जोकि 1987 में शून्य के करीब था, जबकि वह 2007 में बढ़कर 400 ट्रिलियन अमरीकी डॉलर से भी अधिक हो गया (स्लाइड 7)।
- 1990 के दशक के मध्य से अंतर-संबद्ध ऋण बाज़ारों में काफी विकास हुआ। पूलिंग और ट्रैंकिंग की नई 'प्रौद्योगिकियों' ने निजी लेबल परिसंपत्ति-समर्थित प्रतिभूतियों में 2 ट्रिलियन बाज़ार से भी अधिक संवृद्धि को सुसाध्य बनाया, जिसने 'ओरिजिनेट एंड डिस्ट्रीब्यूटट वाले ऋण विस्तार मॉडल को समर्थन प्रदान किया (स्लाइड 8)। वैश्विक ऋण डेरिवेटिव संविदाओं (सीडीएस) की बकाया राशि में बढ़ोतरी हुई, जो 1990 के दशक के मध्य में शून्य था, जबकि वही 2007 में 60 ट्रिलियन डॉलर अधिक से बढ़ गई, साथ ही साथ 'हेजिंग' गतिविधि के इस पैमाने ने ऐसी प्राथमिकता-प्राप्त ऋण लिखतों को पछाड़ दिया, जिन्होंने सीडीएस-

साधित निवेशकों या जारीकर्ताओं को हेजिंग का विकल्प प्रदान किया (स्लाइड 9)। तथा 1990 के दशक के पूर्वार्द्ध में संपार्श्वित ऋण बाध्यताएं (सीडीओ) शून्य से बढ़कर 2005 में 250 बिलियन डॉलर तक पहुंच गईं वहीं सिंथेटिक सीडीओ का उल्लेखनीय विकास हुआ - ऋण एक्सपोज़र गैर-वित्तीय प्रतिपार्टियों की अंतर्निहित देयताओं से तो नहीं, बल्कि सीडीएस बाज़ार के प्रयोग से उत्पन्न हुए। (स्लाइड 10)।

- तथा जिंस वायदा ट्रेडिंग का तीव्र विकास; उदाहरणार्थ 1980 के दशक के पूर्वार्द्ध में तेल वायदा ट्रेडिंग भौतिक तेल की मात्रा से काफी कम रही, जबकि वह 2008 में उस मात्रा से लगभग 10 गुना से ज्यादा बढ़ गई (स्लाइड 11)।

अंतरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों और संबद्ध फोरेक्स ट्रेडिंग के साथ-साथ अन्य वित्तीय गतिविधियों की पूरी श्रृंखला में हुई वृद्धि के चलते पिछले दो दशकों में वास्तविक अर्थव्यवस्था से संबंधित वित्तीय गतिविधि की मात्रा में अत्यधिक वृद्धि हुई है, साथ ही साथ, जटिल वित्तीय नवोन्मेष की लहर भी उठी।

अंतरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाह के साथ-साथ वित्तीय सघनता और नवोन्मेष में बढ़ोतरी हुई, जबकि संकट से पहले औपचारिक दृष्टि से यह माना जा रहा था कि वित्तीय सघनता में हुई बढ़ोतरी ने काफी आर्थिक लाभ पहुंचाए हैं।

आइएमएफ के अप्रैल 2006 के ग्लोबल फाइनैन्शियल स्टेबिलिटी रिव्यू (जीएफएस आर) के एक अध्याय में विशेष रूप से 'वित्तीय स्थिरता पर क्रेडिट डेरिवेटिव और संरचनागत क्रेडिट बाज़ार का प्रभाव' का मूल्यांकन किया गया है, जिसमें नीति-निर्माताओं की परंपरागत अवधारणा को स्पष्ट रूप से उजागर किया गया है और नव-शास्त्रीय सिद्धांत के प्रमुख अनुमानों पर विशद वर्णन किया गया है :

- उसमें मान्यतास्वरूप यह उल्लेख किया गया है कि क्रेडिट डेरिवेटिव 'समग्र क्रेडिट जोखिमों की दृष्टि से बाज़ार की पारदर्शिता को बढ़ाते हैं ...' और इस प्रकार... उनसे व्यापक क्रेडिट परिस्थितियों के बारे में महत्वपूर्ण सूचना उपलब्ध होती है, साथ ही उनसे क्रेडिट के मार्जिन मूल्य को बढ़ाकर तय किया जाता है'। नव-शास्त्रीय मॉडल के अंतर्गत मूल्य की ऐसी पारदर्शिता से बाज़ार की कार्य-कुशलता बढ़ती है और हमें दक्षता-वर्धक संतुलन के पास ले जाती है।
- उसमें मान्यतास्वरूप यह भी उल्लेख किया गया है कि ऐसी अधिक पारदर्शिता 'बाज़ार के अनुशासन में सुधार लाती है', जो अल्पावधिक पूंजी प्रवाह के तर्क को समर्थन प्रदान करती है और जिसके अनुसार देशी नीति-निर्माताओं का बाज़ार अनुशासन एक सुदृढ सकारात्मक गतिविधि है।
- तथा उसने यह तर्क पेश किया कि इन लाभों से अस्थिरता की आशंका तो कम नज़र आती है, बल्कि अधिक वित्तीय स्थिरता होने की संभावना है, क्योंकि संपूर्ण बाज़ार ऐसे निवेशकों के बीच ऋण और संभाव्य चलनिधि जोखिमों को वितरित करते हैं जिनकी प्राथमिकताएं और निजी देयताएं उन्हें सर्वाधिक पात्र-धारक बनाती हैं। उसमें 'इस बात को और अधिक मान्यता मिली है' कि 'बैंकों द्वारा व्यापक व अधिक विविधतापूर्ण निवेशक समूह के बीच ऋण जोखिम को विभाजित किए जाने से बैंकिंग और समस्त वित्तीय प्रणाली को अधिक टिकाऊ बनाने में मदद मिली... उन्नत टिकाऊपन की वजह से दिवालिया बने बैंकों की संख्या में कमी आई और ऋण प्रावधान में काफी स्थिरता बढ़ी।'

मात्र आइएमएफ वित्तीय उदारीकरण के लाभों में विश्वास रखने वाला नहीं था। ऐसे कुछ अर्थशास्त्रियों, विशेष रूप से नौरियल रौबिनी और राबर्ट शिलर ने भी

परंपरागत अवधारणा के संबंध में मूलभूत आपत्ति उठाई। इसके अलावा, बार-बार विशिष्ट आशंकाएं जताई जाती रहीं, जिनके अंतर्गत आइएमएफ ग्लोबल फाइनैन्शियल स्टेबिलिटी रिपोर्ट (जीएफएसआर) भी शामिल है। उसमें मैंने विकास, खास तौर पर क्रेडिट बाज़ारों और जोखिम प्रबंधन प्रणालियों के संबंध में यह उल्लेख किया है कि वे हमेशा जटिलता की बढ़ोतरी के अनुरूप रहे। किंतु नीति-निर्धारक मंडलों का विचार वित्तीय सघनता व वित्तीय नवोन्मेष की बढ़ोतरी के प्रति केवल आशावादी ही नहीं, बल्कि सकारात्मक भी है। साथ ही, उस समय व्याप्त प्रबल बौद्धिक विचार-धारा में विनियामकों का बोल-बाला था, जिसके परिणामस्वरूप यह आशंकापूर्ण तर्क प्रस्तुत किया जा रहा था कि यदि कोई विनियम-विशेष वित्तीय नवोन्मेष या बाज़ार की चलनिधि को जोखिम में डाल रहा हो तो वह परिभाषा के तौर पर ही अनुपयुक्त है। आत्म-स्वार्थी राजनीतिक प्रभाव के चलते एक ऐसे तर्क पर ज़ोर दिया रहा था : भगवती की 'विचार-धारा व अभिरुचि' का संयोजन देशी वित्तीय उदारीकरण (जैसे अमरीका में निवेश बैंकों पर लीवरेज प्रतिबंधों का हटाया जाना) के कुछ प्रमुख उपायों और अल्पावधिक पूंजी प्रवाहों के लाभों के संबंध में उसके दावों से स्पष्ट रूप से प्रभावित हुआ है।

इस प्रकार अब यह जाहिर हुआ है कि वित्तीय सघनता व नवोन्मेष की बढ़ोतरी की पैरवी करने वाली परंपरागत अवधारणा, उत्प्रेरित अस्थिरता की संभाव्य कमी पर प्रकाश डालने से चूक गई। इसके पीछे यह मान्यता रही कि वित्तीय बाज़ार युक्तिसंगत व संतुलनकारी हैं और केन्स/मिन्स्की के विचार कि वित्तीय बाज़ार अयुक्तिपूर्ण आतुरता के सुदृढ़कारी दौरों के अध्यधीन रहते हैं और बाद में लुढ़क जाते हैं, को नकारा या उपेक्षित किया गया।

जैसा कि हमने देखा, आइएमएफ सहित अन्य प्राधिकरणों ने सीडीएस बाज़ार द्वारा प्रस्तुत क्रेडिट मूल्यों की पारदर्शिता की बढ़ोतरी का स्वागत किया है तथा उनका मानना है कि वह इसके लिए लाभकारी है कि क्रेडिट का मार्जिन मूल्य (अर्थात् वास्तविक अर्थव्यवस्था को प्रदत्त ऋणों का मूल्य-निर्धारण) 'क्रेडिट जोखिम के प्रति बाज़ार के समग्र दृष्टिकोण' को सटीक ढंग से उजागर कर सकेगा। किंतु क्रेडिट जोखिम के प्रति बाज़ार का समग्र दृष्टिकोण अत्यंत अयुक्तिपूर्ण साबित हुआ, जिसने वास्तविक अर्थव्यवस्था में हाहाकार मचा दिया। इस चार्ट (स्लाइड 12) में 2002 और 2008 के बीच प्रमुख वित्तीय समूहों के संबंध में व्याप्त सीडीएस स्प्रेड को दर्शाया गया है। उससे यह पता चलता है कि बाज़ार के समग्र दृष्टिकोण के मुताबिक बैंकों से संबंधित ऋण-पात्रता के जोखिम में 2002 और 2007 के बीच लगातार कमी हुई और 2007 के ग्रीष्म-काल के पूर्वार्द्ध में, यानी 70 वर्ष के बदतर वित्तीय संकट के ठीक पूर्व उसमें ऐतिहासिक कमी आई। इस आसन्न जोखिम के संबंध में न तो सीडीएस स्प्रेड ने कोई चेतावनी दी, न ही बैंकों से संबंधित ईक्विटी मूल्यों ने : इसके बजाय उन्होंने वास्तविक अर्थव्यवस्था को अंधाधुंध व अव-मूल्यकृत क्रेडिट उपलब्धता को सही ठहराया और उसे ठोस समर्थन भी दिया। इसके विपरीत सीडीएस मूल्यों ने क्रेडिट के मार्जिन को बाज़ार के समग्र मूल्यांकन के अनुरूप लाने में सहायता प्रदान की : किंतु इसमें यह समस्या उत्पन्न हुई कि बाज़ार के युक्तिपूर्ण स्तर को पार कर जाने की वजह से काफी कम मूल्य की स्थिति पैदा हो गई। अंतरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों में जिस प्रकार तेजी आती है, उसी प्रकार क्रेडिट प्रतिभूतियों व क्रेडिट डेरिवेटिव के बाज़ार में तेजी आने से अंधाधुंध वित्तपोषण का दौर शुरू हो सकता है, जिसके बाद एकाएक रुकावट पैदा हो सकती है और निराशा की लहर उठ सकती है।

साथ ही, अब यह स्पष्ट हो गया है कि वित्तीय तीव्रता की बढ़ोतरी के तथाकथित लाभ, जिनके लिए हम अस्थिरता के खतरों के संबंध में समझौता कर लेने के लिए तैयार हो जाते हों, भी बिना किसी प्रमाण के असिद्ध रह गए।

पूंजी प्रवाह के उदारीकरण के साथ-साथ संरचनागत क्रेडिट व क्रेडिट डेरिवेटिव की विविधता के संबंध में पेश किए गए तर्क को स्वयं-सिद्ध माना गया, क्योंकि उसके संबंध में यह महसूस किया गया कि उसने आबंटनात्मक कार्यकुशलतापरक लाभ या प्रत्यक्ष कल्याणकारी लाभ पहुंचाए, क्योंकि निवेशक जोखिम, प्रतिफल और चलनिधि के मिश्रण को दक्षतापूर्वक प्राथमिकता देने में सक्षम हुए। किंतु ऐसे लाभों से प्राप्त होने वाले मूल्य पर विचार करने का प्रयास ही नहीं किया गया।

सच तो यह है कि समष्टि विश्लेषण को छोड़कर किसी प्रायोगिक तरीके से लाभ को आंकना अत्यंत दुष्कर कार्य है, मिसाल के तौर पर शूलैरिक और टेलर विश्लेषण को बताया जा सकता है, जिसके बारे में मैंने पहले चर्चा की थी। किंतु हमें कम-से-कम यह तो जान लेना चाहिए कि कोई भी लाभ ह्रासमान सीमांतिक प्रतिफल के अध्यधीन होने चाहिए : अर्थात् यदि चल-निधि निश्चित सीमा तक लाभकारी हो तो ऐसी भी कोई सीमा हो जिसके बाद चलनिधि में बढ़ोतरी होने से केवल न्यूनतम वृद्धिशील लाभ पहुंच पाए। पिछले अगस्त के फाइनैन्शियल टाइम्स में प्रकाशित एक आलेख में हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफसर बेंजमिन फ्राइडमेन ने यह प्रश्न उठाया है कि कुछेक क्षणों (या अब एल्गोरिथ्मिक ट्रेडिंग में यूं कहें कि मिलि-क्षणों) में बाज़ार मूल्यों में होने वाले सूक्ष्म अंतरों का पता आर्बिट्रेजरों द्वारा अन्य आर्बिट्रेजरों के पहले उस प्रकार से लगाया जा सकता है जिससे आर्थिक मूल्य में हुई बढ़ोतरी का हिसाब पता चले - जिस प्रकार केनेशियन का 'सुंदर लड़की' वाला निर्णय लिया जाता हो।[19] मेरे विचार में प्रोफसर फ्राइडमेन की आपत्ति, तर्क, जो संभाव्य विनियामक दृष्टिकोण का खंडन इस कारण से करते हैं कि वे विशिष्ट बाज़ार में चल-निधि को कम कर देंगे, के संबंध में हमारी प्रतिक्रिया में सर्वथा अनुपलब्ध है।

[19] बेंजमिन फ्राइडमेन, ओवर माइटी फाइनैन्स लेवीज़ अ टिथ ऑन ग्रोथ, फाइनैन्शियल टाइम्स, 26 अगस्त 2009।

इसमें महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि हम भविष्य के लिए किस प्रकार से एक सुस्थिर वित्तीय प्रणाली विकसित करें। इस संबंध में अपेक्षित प्रमुख उपायों पर काफी सहमति हुई है: जैसे बैंकिंग प्रणाली के अंतर्गत अपेक्षाकृत अधिक चलनिधि की उपलब्धता, प्रति-चक्रीय पूंजी, चलनिधि के उच्चतर स्तर, खासकर ट्रेडिंग बहियों पर अपेक्षाकृत अधिक पूंजी की उपलब्धता। बाज़ार के सहभागियों द्वारा कुछ बैंकों के संबंध में 'टू बिग टु फेल' पर विश्वास किए जाने की दशा में नैतिक जोखिम और बाज़ार अनुशासन के अभाव संबंधी समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया जाना।

प्रस्तुत कार्य-सूची को आगे बढ़ाते हुए हम केवल अंतिम संकट पर ही विचार न करते रहें, बल्कि हमें अंतिम व पूर्ववर्ती वित्तीय संकटों के बीच साम्य विशेषताओं पर भी प्रकाश डालना बहुत ज़रूरी है तथा हम इस बात पर काफी गहराई से विश्लेषण कर रहे हैं कि गलती हुई कहाँ। विशेष रूप से हमें यह प्रश्न पूछते रहना चाहिए कि क्या बाज़ार-विशेष की त्रुटियों को दूर करने और खराब उत्प्रेरणा को बंद कर देने से वित्तीय प्रणाली को स्व-संतुलनशील बनाया जा सकेगा या क्या विविधतापूर्ण वित्तीय प्रणालियां और बाज़ार अंतर्निहित कारणों की वजह से संभवतः अस्थिर हैं। ऐसे मामले में हमें अंधाधुंध आतुरता को संभालने के लिए और वित्तीय गतिविधि की मात्रा को सीमित रखने के लिए आवश्यक साधन रखना चाहिए।

विशिष्ट नीति के निहितार्थ में कम-से-कम तीन क्षेत्रों का अनुपालन हो :

i. पहला, प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण 'टू बिग टु फेल' बैंकों के संबंध में कार्रवाई करना ज़रूरी है, परंतु उसे पर्याप्त नहीं समझना चाहिए। नव-शास्त्रीय प्रस्तावों में सुदृढ विश्वास रखने वाला विचार ही पर्याप्त होगा।

ii. दूसरा, विकसित देशों को क्रेडिट चक्र की अस्थिरता को नियंत्रित करने हेतु नए-नए साधनों को तैयार करना है, जिसके लिए क्रेडिट विस्तार की पहचान करना

ही समष्टि-आर्थिक व वित्तीय स्थिरता नीति का एक महत्वपूर्ण चर है।

iii. तीसरा, हमें अनावश्यक प्रॉपराइटी ट्रेडिंग को कम करने की दृष्टि से ट्रेडिंग गतिविधि के लिए उच्चतर पूंजी का उपयोग करते हुए बाज़ार की चल-निधि के लाभों के प्रति संतुलित दृष्टि रखनी चाहिए, जिसके लिए वित्तीय लेनदेन संबंधी करों की संभाव्य भूमिका को भी निकालना नहीं चाहिए।

(i) 'टू बिग टु फेल' पर ध्यान-केंद्रित करना : ज़रूरी, लेकिन पर्याप्त नहीं

वर्ष 2007 से 2009 तक के वित्तीय संकटों के प्रतिक्रियास्वरूप कई विकसित देशों के प्राधिकरणों ने प्रमुख बैंकों की चलनिधि की स्थिति और शोधन-क्षमता को समर्थन प्रदान करते हुए वित्तीय प्रणाली की स्थिरता सुनिश्चित की है। इसके लिए परंपरागत रूप से पूंजी की उपलब्धता, केंद्रीय बैंक के चलनिधिगत प्रावधान और मध्यम-अवधि के बैंक वित्तपोषण की सरकारी गारंटियों ने साथ दिया। इन उपायों ने विश्वास को बहाल करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। किंतु उन्होंने नैतिक जोखिम की समस्या को और बढ़ा दिया है। जब कुछ छोटे बैंकों ने शोधन-क्षमता खो दी तो प्राधिकरण ने गैर-बीमाकृत जमाकर्ताओं और थोक-बिक्री निधि-प्रदाताओं पर हानि का बोझ लाद दिया। प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण बैंकों के मामले में प्राधिकरणों ने समूचे बैंकिंग समूह को बचाने का विकल्प चुना और केवल ईक्विटी-धारकों पर हानि का बोझ डाल दिया (डाइलयूशन के माध्यम से) और निधि-प्रदाताओं के इतर वर्ग को, यहाँ तक कि गौण उधार पूंजी के अभिदाता वर्ग को भी अछूता छोड़ दिया। इससे उस मान्यता को डगमगाने की आशंका उत्पन्न हो जाती है कि कुछ बैंक 'टू बिग टु फेल' वाले हैं। साथ ही, उस वर्ग में बैंकों के जोखिम उठाने के संबंध में बाज़ार अनुशासन को अनदेखा किया जा रहा है।

अतः 'टू बिग टु फेल' वाली समस्या का समाधान ढूंढ़ना अंतरराष्ट्रीय विनियामक एजेंडा का एक महत्वपूर्ण अंग है और वह फाइनैन्शियल स्टेबिलिटी बोर्ड, विशेष रूप से रेगुलेटरी एंड सुपरवाइज़री को-ऑपरेशन, जिसकी अध्यक्षता मैं कर रहा हूँ, संबंधी स्थायी समिति की प्रमुख प्राथमिकता बन गया है। विचाराधीन विकल्पों के अंतर्गत दिवालिया बनने की संभावना को कम करने हेतु प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण बड़े बैंकों पर पूंजीगत अधिप्रभार लगाना; ऐसी आकस्मिक पूंजी लिखतों का विकास करना जोकि दिवालिया होने से काफी पहले हानि को ग्रहण करने वाली ईक्विटी में स्वतः परिवर्तित हो जाएंगी; वसूली व समाधान योजनाएं विकसित करना जोकि बैंकों को ऐसे तरीके से आंतरिक रूप से संगठित रहने हेतु अपेक्षित हैं जिससे प्राधिकरणों को समस्त समूह का एकल संस्था के रूप में बचाव करने के विकल्प को छोड़कर अन्य किसी विकल्प अपनाने में सक्षम बनाया जाए। ऐसे नीतिगत विकल्पों का सिलसिला भी महत्वपूर्ण है जोकि जमा लेने वाले बैंकों की जोखिमपूर्ण प्रापराइट्री-ट्रेडिंग गतिविधियों में संबद्धता की व्याप्ति को सीमित रखने से संबंधित है, इस बात पर ओबामा प्रशासन ने हाल ही में प्रस्ताव पेश किए हैं।

ये नीतियां, गतिविधियों के आकार या व्याप्ति के कारण उत्पन्न जोखिमों का प्रतिबंधित या अधिक कुशलतापूर्वक प्रबंध करती हैं, जिन्हें ऐसे साधन के रूप में देखा जाता है जिनके माध्यम से करदाताओं को जोखिम से बचाने के लिए गत दो वर्षों में हुए खर्चीले बचाव परिचालनों का दोहराव करना होगा। ये विनियामक प्रतिक्रिया का अनिवार्य अंग हैं। किंतु ये निम्नलिखित कारणों की वजह से पर्याप्त प्रतिक्रियाशील नहीं हैं :

- पहला, संकट की सर्वाधिक महत्वपूर्ण आर्थिक लागतें करदाता के बचाव संबंधी प्रत्यक्ष लागतों से व्युत्पन्न नहीं होती हैं। केंद्रीय बैंक का चलनिधिगत समर्थन, जोकि बाज़ार व दंड संबंधी दरों का मेल है, अधिकांश

मामलों में सरकारी प्राधिकरणों के लिए लाभकारी होगा; अधिकांश मामलों में ऋण गारंटियां वापस मांग नहीं ली जातीं, यदि घाटे में बेच दी गईं तो भी वह हानि सकल देशी उत्पाद के कुछ ही प्रतिशत की होगी। अतः विकसित देशों में शोधन-क्षमता न रखने वाले व चलनिधि रहित बैंकों के बचाव के संबंध में लगने वाली प्रत्यक्ष सरकारी लागतें सकल देशी उत्पाद के 5 से 10% से अधिक नहीं हैं, किंतु उससे काफी कम होंगी। 1990 के दशक में स्वीडन में यह स्थिति रही, वैसे ही इस संकट के बाद यूके और यूएस में यही स्थिति बनने की संभावना है। किंतु सर्वमान्य पूर्वानुमानों के मुताबिक यूके सरकार का जीडीपी के प्रति ऋण संकट से पहले 40% से कम रहने की संभावना है, वही संकट के बाद 90% हो सकता है। इस 50% बढ़ोतरी का कारण बचाव व्यवस्था में लगने वाली लागत नहीं अपितु क्रेडिट अस्थिरता, अर्थात् पहले अत्यंत अंधाधुंध तरीके से और बाद में अत्यधिक नपे-तुले तरीके से, की आपूर्ति व मांग में परिणामस्वरूप उत्पन्न समष्टि-आर्थिक अस्थिरता थी।

- दूसरा, हमें यह नोट करना चाहिए कि अंधाधुंध तरीके से क्रेडिट की आपूर्ति करने में अनेक मध्यमाकार बैंक बड़े आकार के बैंकों से कुछ कम नहीं रहे। यूएस में संकट की प्रारंभिक अवस्थाओं में सिटी बैंक या बैंक ऑफ अमरीका जैसे बड़े बैंकों का हाथ रहा, जबकि संकट के वर्तमान दौर में व्यापारिक रियल-एस्टेट उधार में अतिसंलिप्त अनेक मध्यमाकार क्षेत्रीय बैंकों में अत्यंत अशोध्य ऋण हानि उत्पन्न हो रही है। यूके में बृहत् संयुक्त वाणिज्य व ट्रेडिंग बैंक आरबीएस में कुछ समस्या उत्पन्न हुई, जबकि उतनी ही बड़ी समस्या पुराने तरीके से अशोध्य वाणिज्य रियल-एस्टेट उधार में संलिप्त स्पष्टवादी वाणिज्य बैंक एचबीओएस में भी पैदा हुई। तथा इस संबंध में ऐसे किसी कारण की गुंजाइश ही नहीं है कि एचबीओएस एक बड़े आकार का बैंक होने के बजाय दो या तीन छोटे बैंकों में रहता तो समस्या काफी कम हो सकती थी।

- तीसरा, प्रमुख वाणिज्य बैंकों की प्रोपराइट्री ट्रेडिंग गतिविधि की सीमा दिवालिया की संभावना को और करदाता को लगने वाली लागत को कम करने में महत्वपूर्ण अदा कर सकेगी, किंतु हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि ट्रेडिंग गतिविधियों में बड़े पैमाने पर संलिप्त गैर-बैंक वित्तीय संस्थाओं, विशेष रूप से जब वे सर्वाधिक संक्रमणजन्य जोखिमों को ग्रहण कर ले रही हों, की वजह से उत्पन्न प्रणालीगत जोखिमों और अस्थिरता की अनदेखा नहीं करना चाहिए। लीमेन ब्रदर्स जमा लेने वाला बैंक नहीं था, किंतु उसके दिवालिया बनने की वजह से संकट और गहराने लगा।

- चौथा, क्रेडिट की अंधाधुंध आपूर्ति की समस्याएं उस स्थिति में भी उत्पन्न होंगी जब तुलन-पत्रों के बजाय प्रतिभूतिकृत रूप में क्रेडिट दिए जाएं। बैंकिंग प्रणाली को पूर्णतः सुरक्षित रख पाना संभव हो भी जाए, तब भी अस्थिर क्रेडिट विस्तार की आशंका बनी रहेगी। वस्तुतः यह तथ्य संकट का एक मूल कारण रहा कि ऋण के अधिक पारदर्शी मूल्यों के सृजन के माध्यम से प्रतिभूतिकृत क्रेडिट का विकास करने से और चलनिधिगत बाजारों में ऋण जोखिम को समाप्त करने को सुसाध्य बनाने के माध्यम से क्रेडिट के कीमत-निर्धारण और ऋण जोखिम मूल्यांकन के दायरे को बढ़ाया गया, साथ ही साथ, उन्हें स्व-प्रासंगिक व परिक्रामी बनाया गया। कुछ बैंकर अपने-आप से यह नहीं पूछते कि 'ऋण विश्लेषण से, अंतर्निहित जोखिमों के मद्देनज़र अमुक ऋण के उपयुक्त मूल्य के संबंध में क्या पता चलता है?', किंतु वे महज प्रतिभूतिकृत क्रेडिट

व सीडीएस बाज़ार में ऋण के पारदर्शी मूल्य का अवलोकन करते रहते हैं और उसे पारिभाषिक रूप से उपयुक्त पाते हैं तथा ऋण जोखिम के कम मूल्य को ऋण जोखिम में हुई कमी का प्रमाण मान लेते हैं, साथ ही, चलनिधिगत बाज़ारों की अविवेकपूर्णता से मुक्त रहने वाले ऋण जोखिम के संबंध में निर्णय लेने में क्रेडिट विश्लेषण का प्रयोग ही नहीं करते। ये समस्याएं एक समस्त प्रतिभूतिकृत क्रेडिट प्रणाली में उत्पन्न हो सकती हैं और उन्हें करदाता पर लागत लगाए बिना बैंकों के समापन को संभव बनाने मात्र से दूर नहीं किया जा सकता।

इसके मद्देनज़र, 'टू बिग टु फेल' वाली बात अति महत्वपूर्ण हो ही जाती है, जबकि वित्तीय अस्थिरता की समस्याओं को दूर करने में अपने-आप में वह विचार सक्षम है, ऐसा मानकर नहीं चलना चाहिए। वस्तुतः वित्तीय बाज़ार को आत्म-संतुलनशील बनाने में नव-शास्त्रीय प्रस्ताव में सुदृढ़ विश्वास रखकर पर्याप्त प्रतिक्रिया तब साकार हो सकेगी जब हम ऐरो-डेब्रू निरवाना- इस मामले में 'टू बिग टु फेल' वाले बैंकों द्वारा उत्पन्न खराब उत्प्रेरणाएं और बाज़ार अनुशासन का अभाव - की स्थिति में पहुंचने से रोककर महत्वपूर्ण त्रुटियों को दूर करने व सुधारने का उपाय कर लेंगे। यदि इसके स्थान पर हम विश्वास करते हैं कि केन्स/मिन्स्की वाली विचार-धारा वित्तीय प्रणालियां और बाज़ार आत्म-सुदृढ़कारी भीड़ व गतिक प्रभाव के अंतर्निहित अध्यधीन है, तो हमें 'टू बिग टु फेल' वाली बात को अन्य नीतिगत प्रतिक्रियाओं के साथ संबद्ध करना होगा।

(ii) अस्थिर ऋण विस्तार पर ध्यान-केंद्रित करने के नए साधन

ऐसे नीतिगत साधनों का केंद्रीभूत ध्यान ऋण विस्तार और संबद्ध परिसंपत्तिगत बुलबुलों, विशेषकर आवासीय व वाणिज्य रियल-एस्टेट के प्रति गतिशील होना चाहिए।[20] जहाँ क्रेडिट की आपूर्ति व मांग पूंजी-प्राप्ति (मात्र पूंजी प्रवाह से व्युत्पन्न ऋणदायी क्षमता के आधार पर न हो) की अपेक्षाओं के आधार पर की जाती हो, परिसंपत्तियाँ (उदाहरणार्थ व्यापारिक रियल एस्टेट) व क्रेडिट दोनों बाज़ार में मूल्य व मात्राएं स्व-प्रबलकारी बुलबुले प्रभावों (क्रेडिट के बोनानज़ा) के अध्यधीन होती हैं, तदुपरांत एकाएक रुकावटें (परिसंपत्तियों के मूल्यों में गिरावट, ऋण संकुचन व ऋण की अवस्फीति) पैदा होती हैं, जिसे ठीक करने के लिए यदि आक्रामक वित्तीय व मौद्रिक नीति नहीं बनाई जाती तो गंभीर आर्थिक क्षति हो सकती है। पिछले कई दशकों में समूचे बैंकिंग संकट के पीछे व्यापारिक रियल एस्टेट क्षेत्रों को बड़ी मात्रा में व कम मूल्य पर दिए गए ऋणों का हाथ रहा है।

किंतु विभिन्न क्षेत्रों में ऋण की मांग के अंतर्गत ब्याज दर-लोच में अत्यंत विविधता की दृष्टि से ऐसे अत्यधिक ऋण विस्तार को ब्याज दर संबंधी आदर्श मौद्रिक नीति के माध्यम से नियंत्रित किया जाना कारगर साबित नहीं हो सकता। यह उस स्थिति में प्रासंगिक है जब ब्याज दर में बढ़ोतरी के साथ-साथ परिसंपत्ति के मूल्य में अंधाधुंध तरीके से होने वाली वृद्धि व्यापारिक रियल एस्टेट को उधार देने की गति को कम करने के काफी पहले ही व्यापारिक माल क्षेत्र (प्रत्यक्ष ब्याज लागत प्रभावों व विनिमय दर दोनों के माध्यम से) में नुकसानदेह प्रभाव छोड़ सकती है।

अतः नियंत्रण के लिए नए समष्टि-विवेकपूर्ण साधनों का विकास करना बेशक ज़रूरी है - अर्थात् ऐसी कोई व्यवस्था जिससे कि आप अपने ग्राहक के दूर जाने से पहले उसका कटोरा तक छीन लें। इसके अंतर्गत या तो समस्त रूप से या व्यापारिक रियल एस्टेट जैसे विशिष्ट क्षेत्रों के

[20] यहाँ गतिशीलता के बारे में मोटे तौर पर वर्णन प्रस्तुत किया गया है, जबकि 17 मार्च 2010 को कैस बिज़नेस स्कूल, लंदन में आयोजित होने वाले 'वाट डू बैंक्स डू, वाट शुड दे डू?' नामक व्याख्यान में इस पर विस्तृत रूप से विचार-विमर्श किया जाएगा।

संबंध में चक्र के माध्यम से पूंजीगत अपेक्षाओं में विवेकपूर्ण अंतर शामिल हो सकता है। अन्यथा ऐसे नए विनियम जो उधारकर्ता के साथ-साथ उधारदाता की गतिविधियों को प्रत्यक्षतः प्रभावित करते हों - जैसे अनुमेय ऋण-मूल्य अनुपात के संबंध में सीमा-निर्धारण: ऐसे नए साधन जिनमें इस मान्यता की कोई गुंजाइश न हो कि सुस्थिर संतुलन केवल उस दशा में संभव है जब बाज़ार दक्षतापूर्ण हो और आदर्श मौद्रिक नीति के साधनों की रचना उपयुक्त ढंग से हुई हो।[21]

किंतु जिन 'नए' साधनों की बात मैं कर रहा हूँ, वे भारत के लिए नए नहीं हैं, जिन्हें आप हाल ही में प्रयोग में लाए हैं और वह भी कारगर ढंग से। वे विकसित देशों के लिए भी नई चीज नहीं हैं। अपितु हम उन्हें करीब 30 से 40 वर्ष पहले प्रयोग में लाया करते थे, लेकिन उन्हें पुरानी चीज कहकर और नव-शास्त्रीय प्रस्तावों के अंगीकरण की वजह से अति-उत्साह में त्याग दिया है।

(iii) बाज़ार की चलनिधि के प्रति संतुलित दृष्टिकोण

समष्टि-विवेकपूर्ण प्रबंधन के इन साधनों के साथ-साथ हमें बाज़ार की चलनिधि की बहुलता के लाभों व संभाव्य कमियों के प्रति विशाल हृदय रखना चाहिए, तथा अपेक्षाकृत और संतुलित विनियामक दृष्टिकोण रखना चाहिए।

कई वर्षों तक बाज़ार की चलनिधि की बहुलता के लाभ केवल मान्यता की चीज रह गए, जिनकी बात सख्त विनियमन की खातिर यदा-कदा की जाती थी। तथा बढ़ती चलनिधि स्पष्टतः निश्चित सीमा तक महत्व रखती है। उससे व्यक्तियों और कार्पोरेटों को उपलब्ध विधिक विकल्पों का दायरा बढ़ता है। उससे फोरेक्स और पण्य-वस्तु हाज़िर व वायदा जैसे वर्तमान व आसन्न-वर्तमान बाज़ार में अंतिम-उपयोगकर्ताओं की परिचालन लागत में कमी होती है। वह बाज़ार में पूंजी आबंटन तंत्र के एक अंग का रूप धारण कर लेती है, जोकि बचतकर्ताओं को (ईक्विटी व बांडों के माध्यम से) निवेश से जोड़ती है। वह निवेशकों को कई सारे विकल्प मुहैया कराती है, जिससे कि निवेशक ऐसी निधियां प्रदान करने में सक्षम बनते हैं जोकि निर्गमकर्ताओं से विधिक रूप से प्रतिबद्ध दीर्घावधिक स्वरूप की, लेकिन उन्हें उन निधियों को अल्पावधि के लिए धारित करने का विकल्प मिल जाता है। सिद्धांतः इससे कल्याणकारी लाभ प्राप्त होता है (निवेशक की पसंदगी की दृष्टि से उपलब्ध विकल्पों में से काफी मिलते-जुलते विकल्प मुहैया करते हुए) और कुछ परिस्थितियों में इससे बचत व निवेश की अपेक्षाकृत अधिक उच्च दर दर्ज होती है। ईमानदारी के साथ हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि चलनिधि बहुल बाज़ारों के लिए सटोरियों का होना ज़रूरी है - अर्थात् वह ट्रेडर जो विशेष रूप से लाभ कमाने के लिए सहभाग लेते हों, तथा ये सटोरिये अमुक परिस्थितियों में सोच-समझकर आगे बढ़ते हैं, जिससे बाज़ार का अनुशासन संभव हो पाता है और उसके परिणास्वरूप उत्पन्न होने वाले मूल्यों के संबंध में सोच-समझकर निर्णय लिया जाता है।

किंतु केन्स का मानना था कि 'परंपरागत वित्त के तथाकथित रूपों में से कोई भी रूप निश्चित तौर पर चलनिधि के उन्माद की तुलना में अधिक समाज-विरोधी नहीं है, अर्थात् वह सिद्धांत जिसमें संस्थागत निवेशक द्वारा ''तरल'' प्रतिभूतियों का धारण किए जाने हेतु उन्हें अपने संसाधनों के प्रति ध्यान-केंद्रित किया जाना सकारात्मक दृष्टिकोण माना जाता है।''[22] तथा बाज़ार की चल-निधि के असीम लाभों और उसे साकार बनाने के लिए अपेक्षित सट्टेबाजी के प्रति संशयात्मकता को दो कारणों से न्यायसंगत ठहराया जा सकता है :

[21] ऐसे साधनों और उनके प्रयोग में निहित जटिलताओं से संबंधित मामले पर बैंक ऑफ इंडलैंड के चर्चा-पत्र ''द रोल ऑफ मैक्रोप्रूडेन्शियल पॉलिसी'', नवंबर 2009 में विचार-विमर्श किया गया है।

[22] जे.एम. केन्स, द जनरल थियोरी, अध्याय 12।

- पहला, यह तथ्य कि बाज़ार की चलनिधि के लाभ मार्जिन की ह्रासमान उपयोगिता के अध्यधीन हो, जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है। फ्लैश व अल्गोरिथ्मिक ट्रेडिंग से व्युत्पन्न अतिरिक्त चलनिधि, जोकि कुछेक क्षण के लिए मूल्य में अंतर की वजह से उत्पन्न होती हो, उपलब्ध कराने से होने वाले लाभ का मूल्य दिन-प्रति-दिन के आधार पर समुचित चलनिधि के प्रावधान से अपेक्षाकृत कम है।
- तथा दूसरा, यह तथ्य कि निश्चित सीमा तक, जिसे भांपना दुष्कर है और जो कालक्रम में अस्थिर रहती हो, बाज़ार की अधिकतर चलनिधि और सटोरिये की बड़े पैमाने पर भूमिका अस्थिर, हानिकारक समूह व गतिक प्रभाव छोड़ सकती है।

अतः अतिरिक्त चल-निधि के लाभों के संबंध में हमारे मानसिक विचार कहीं ऐसा न हो जिसमें चलनिधि सदा के लिए लाभकारी लगती हो, किंतु कदाचित् इस चार्ट (स्लाइड 13) में दर्शाए अनुसार ऐसा हो जिसमें वे लाभ ह्रासमान सीमांतिक उपयोगिता के अध्यधीन हों और उसमें अस्थिरकारी सट्टे की गतिविधि की आशंका से उत्पन्न होने वाले नकारात्मक प्रभाव की क्षतिपूर्ति व खतरा बढ़ने वाला हो। किंतु गंभीर जटिलता के चलते अनुकूलतम लाभ की निश्चित सीमा को सटीक ढंग से बता पाना अत्यंत दुष्कर है, क्योंकि उसमें बाज़ार के प्रकार और समय के अनुरूप परिवर्तन होता रहता है तथा हमारे पास ऐसे अत्यंत त्रुटिपूर्ण साधन उपलब्ध हैं जिनके माध्यम से बिना किसी नुकसान के लाभ प्राप्त कर पाना असंभव है। उदाहरणार्थ मुद्रा के ऐसे 'कैरी ट्रेड्स' में सट्टे के संचालन में मुझे कोई आर्थिक दृष्टि से मूल्य रखने वाली चीज दिखाई नहीं दे रही है, जोकि प्रोफसर जॉन के दृष्टांतों में शामिल हैं, जिन्हें उन्होंने 'टेलगेटिंग रणनीति' की संज्ञा दी है - मतलब है अपने आप के बारे में यह निरर्थक प्रवृत्ति रखना कि हम तबाही के ठीक पहले बच जाएंगे।[23] किंतु ऐसा कोई साधन हो नहीं सकता जो गैर-वित्तीय कार्पोरेशनों के लिए उपयोगी फोरेक्स बाज़ार की चलनिधि का अवमूल्यन किए बिना कैरी-ट्रेड गतिविधियों का निष्कासन कर सकता हो।

तथ्य यह है कि हमारे पास सटीक विवेकपूर्ण साधन है ही नहीं, किंतु इसका मतलब यह नहीं कि बाज़ार की चलनिधि के लाभों के अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्मतापूर्ण मूल्यांकन का, सरकारी नीति की दृष्टि से कोई महत्व ही नहीं। लेकिन इसके तीन महत्व है :

- पहला है, वाणिज्य व निवेश बैंकों के लिए ट्रेडिंग बही संबंधी पूंजीगत अपेक्षाओं का निर्धारण करते समय हमें चलनिधि का पक्ष नहीं, बल्कि रूढ़िवाद का पक्ष लेना चाहिए। एक ओर विनियामक यह मानते हों कि विवेकसम्मत प्रयोजनों की मांगों की पूर्ति के लिए पूंजी के अपेक्षित स्तर को बढ़ा दिया जाए, दूसरी ओर उद्योग क्षेत्र यह तर्क प्रस्तुत करता है कि इससे बाज़ार-विशेष में चलनिधि की कमी आएगी तो हमें यह जान लेने के लिए तैयार हो जाना चाहिए कि क्या चलनिधि आर्थिक प्रयोजनों की दृष्टि से उपयोगी है और कुछ मामलों में उसे छोड़ देना समीचीन होगा।
- दूसरा है, नीति-निर्माताओं को अस्थिरकारी सट्टे की गतिविधि के संभाव्य खतरे के प्रति ध्यान-केंद्रित करना चाहिए, चाहे गैर-बैंक ऐसी गतिविधियों में संलिप्त क्यों न हों। सट्टा ट्रेडिंग गतिविधि नुकसानदेह हो सकती है, भले ही उससे वाणिज्य बैंक की शोधन-क्षमता पर कोई खतरा न मंडरा रहा हो। आवश्यकता पड़ने पर, लीवरेज सीमाओं के जरिए अत्यंत लीवरेज्ड हेज निधि सट्टेबाजी पर काबू पाना चाहिए।

[23] कृपया जॉन काय का, ''टेलगेटिंग ब्लाइट्स मार्केट्स एंड मोटरवेज़'', फाइनैन्शियल टाइम्स, 19 जनवरी 2010 देखें।

- तीसरा है, हमें वित्तीय लेनदेन करों की संभाव्य भूमिका की अनदेखी नहीं करनी चाहिए, जिसके संबंध में जेम्स टॉबिन्स का कहना है कि 'सट्टे की गतिविधियों के पहिये के नीचे कुछ रेत डाल दो ताकि यह फिसले नहीं।' सामान्य स्तर पर और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य वित्तीय लेनदेन कर, चाहे वह फोरक्स प्रवाहों पर या व्यापक पैमाने में वित्तीय लेनदेनों से संबंधित हो, का मामला अब साकार होने का नाम नहीं ले रहा है। लेनदेन कर के विवाद की एक रोचक विशेषता यह है कि उसके संबंध में ऐसे शिक्षाविदों ने ढेर सारे आलेख लिखे, जोकि सैद्धांतिक रूप से वित्तीय लेनदेन कर का समर्थन कर रहे थे, किंतु बाद में उन्होंने उस विचार को आगे नहीं बढ़ाया। 1989 में लैरी सम्मर्स ने 'ह्वेन फाइनैन्शियल मार्केट्स वर्क टू वेल : कॉसस केस फॉर सेक्यूरिटीज ट्रैन्सेक्शन्स टैक्स'[24] नामक आलेख की सह-रचना की, लेकिन बाद में उन्होंने उसका पालन नहीं किया। 1990 में रू डी डॉर्नबुश ने यह तर्क पेश किया कि 'अब वित्तीय लेनदेन कर लागू करने का समय आ गया है', किंतु तदुपरांत उन्होंने व्यापक पूंजीगत नियंत्रण की व्यवहार्यता पर सवालिया निशान लगा दिया।[25] परंतु हमें वित्तीय लेनदेन कर को अपने 'वर्जित विचारों की सूची' में से हटा देना चाहिए और हमें उभरते देशों द्वारा आंतरिक सट्टेजन्य पूंजी प्रवाहों पर कर-संबंधी नियंत्रणों के अनुप्रयोग के संबंध में तैयार रहना चाहिए, जैसा कि चाइल ने 1990 के दशक में किया और हाल में ब्राज़ील ने भी इसकी शुरुआत की है।

सामान्यतः वित्तीय तीव्रता व वित्तीय उदारीकरण के समूचे लाभों पर विचारणीय निष्कर्ष ऐसा हो सकता है कि वे कतिपय बाज़ारों के लिए निश्चित सीमा तक महत्वपूर्ण है, किंतु सभी बाज़ारों के लिए नहीं और न ही असीम रूप से। एक ऐसा मामला जोर पकड़ रहा है कि एक ऐसी आधुनिक वित्तीय प्रणाली का विकास किया जाए, जिसमें बैंकों और कार्पोरेट बांड व ईक्विटी बाज़ारों और मूलभूत रिटेल व थोक बीमा सेवाओं का समावेश हो, जोकि आर्थिक विकास की दृष्टि से अत्यंत लाभकारी है। वाल्टर बेगहॉट ने लोंबर्ड स्ट्रीट में यह तर्क पेश किया कि उन्नीसवीं शताब्दी की उन्नत अंग्रेज़ी बैंकिंग प्रणाली ने यूके को यूरोप महाद्वीप स्थित देशों से कहीं अधिक ऐसी बचत-राशि जुटाने में प्रभावी ढंग से सक्षम बनाया, जोकि अन्यथा स्थिति में निष्क्रिय पड़ी होती। सैकड़ों अध्ययनों ने मूलभूत बैंकिंग व वित्तीय प्रणालियों के विकास तथा आर्थिक विकास के बीच यादृच्छिक या समय-क्रम संबंधी सह-संबंधों को निरूपित किया है।[26] भारत में बैंकिंग प्रणाली के मौजूदा दायरे से बाहर वाली आबादी को मूलभूत बैंकिंग सेवा प्रदान करने और उसके लिए सुदृढ ऋण प्रदान करने के परिप्रेक्ष्य में वित्तीय सघनता, कल्याण व विकास की दृष्टि से सकारात्मक बन सकती है। सुविकसित कार्पोरेट बाज़ार, जिन्होंने गैर-बैंक के वित्त को कंपनियों की ओर सहज पारदर्शी रूप में प्रवाहित करना सुसाध्य बनाया हो, निवेश के वित्तपोषण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। मूलभूत बैंकिंग सेवाओं में प्रतिस्पर्धा, जिसके अंतर्गत अंतरराष्ट्रीय बैंकों द्वारा हस्तांरणीय कौशल के संबंध

[24] एल.एच. सम्मर्स और वी.पी. सम्मर्स, जर्नल ऑफ फाइनैन्शियल सर्विज़ रिसर्च, 1989।

[25] रु डिगर डॉर्नबुश, 'इट्ज़ टाइम फॉर ए फाइनैन्शियल ट्रैंसेक्शन्स टैक्स', द इंटरनैशनल इकॉनोमी, अगस्त/सितंबर 1990। कृपया नोट करें कि डैनी रोड्रिक ने यह तर्क पेश किया कि पूंजी नियंत्रण के संबंध में डॉर्नबुश का परवर्ती संशयवाद डॉर्नबुश के पूर्ववर्ती रुख से सर्वथा भिन्न है, वस्तुतः यह संभव है कि वह पूंजी प्रवाह से संबंधित कानूनी प्रतिबंध के विरुद्ध है, लेकिन उन पर कर लगाने के पक्ष में है।

[26] उदाहरणार्थ 'आई.आर.जी. किंग और आर. लेविन फाइनैन्स एंड ग्रोथ : शूम्पीटर माइट बी राइट, क्वाटर्ली जर्नल ऑफ इकॉनोमिक्स' 1993, या रूसो और साइला, इमर्जिंग फाइनैन्शियल मार्केट्स एंड अर्ली यूएस ग्रोथ, एनबीईआर डब्ल्यूपी 7448 देखें।

में देश-विशेष के प्रति की गई दीर्घावधिक प्रतिबद्धताजन्य प्रतिस्पर्धा भी शामिल है, उदारीकरण का लाभकारी रूप सिद्ध हो सकती है।

किंतु हम अपेक्षाकृत अधिक वित्तीय सघनता, नवोन्मेष और विविधता को असीम रूप से लाभकारी मानकर वित्तीय सघनता और उन्नति के लाभकारी प्रभाव को नियत सीमा से अधिक प्राप्त नहीं कर सकते। अर्थात् यदि कोई मूलभूत बैंकिंग प्रणाली के लाभ किसी देश के लिए हितकर हों तो वह डेरिवेटिव के समूचे वर्गों में सक्रिय ट्रेडिंग बनाए रखेगी। संभव है (स्लाइड 14) नियत सीमा के बाद अधिक वित्तीय सघनता, जिसे कई प्रकार के सूचकों के माध्यम से आंका जाता हो और उनके बारे में मैं पहले चर्चा प्रस्तुत कर चुका हूँ, सकारात्मक लाभ पहुंचाने में सक्षम नहीं है या यहाँ तक कि नकारात्मक प्रभाव छोड़ सकती है।

विभिन्न बाज़ारों के बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता और उनके बीच वास्तविकता में अंतर हो सकता है। नियामकों और केंद्रीय बैंकरों के समक्ष यह समस्या है कि इस संबंध में इस निष्कर्ष से कोई सही समाधान नहीं निकल पाया जिसके आधार पर नीति बनाई जा सके। यदि पूंजीगत अपेक्षाओं और संपार्श्विक प्रबंधन नियमों की वजह से बाज़ार के आकार में कमी होती हो तो एक बाज़ार (मिसाल के तौर पर हाजिर ईक्विटी) को चलनिधि बहुल और तकनीकी दृष्टि से अधिक सक्षम बनाने के साथ-साथ किसी अन्य बाज़ार (उदाहरणार्थ जटिल द्विपक्षीय सीडीए संविदाएं) में विपरीत स्थिति उत्पन्न करना अनुकूलतम साबित हो सकता है। ऐसे व्यर्थ के निष्कर्ष से कई लोग आशंकित हो सकते हैं। स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट व सरल मान्यता के आधार पर जीवन-यापन करना सहज है, जिससे समूचे मुद्दों का हल हो जाता है। किंतु हमें उस दुनिया में रहने से अपेक्षाकृत और भी अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं जहाँ नाजुक समझौते करने पड़ते हों, साथ ही रिश्ते भी निश्चित सीमा तक सच्चे रहते हों।